SWAMI CHIDANANDA BIRTH CENTENARY
SERVE LOVE MEDITATE REALIZE
THE DIVINE LIFE SOCIETY
1916 - 2016
जीवन में
चरित्र का महत्व
स्वामी चिदानन्द

जीवन में चरित्र का महत्त्व

श्री स्वामी चिदानन्द

प्रकाशक
द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९१९२
जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org
प्रथम संस्करण : २०१६

(२,००० प्रतियाँ)

Swami Chidananda Birth Centenary Series-93

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर-२४९१९२,
जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

प्रकाशकीय

परम आराधनीय श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की जन्मशती के पुनीत अवसर की निर्दिष्ट शुभतिथि २४ सितम्बर २०१६ है। इस मंगलमय महोत्सव को मनाने हेतु मुख्यालय शिवानन्द आश्रम की सुनिश्चित योजना-

अनुसार परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के प्रबोधक प्रवचनों से समाविष्ट एक सौ पुस्तिकाओं का प्रकाशन निःशुल्क वितरणार्थ किया जा रहा है।

विश्ववंद्य सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के दिव्य जीवन-सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसारार्थ परम पूजनीय श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज व्यापक रूप से देश-विदेश में आध्यात्मिक यात्रा करते हुए असंख्य जिज्ञासुओं, भगवद्भक्तों को अपने स्वतःस्फुरित सहज, अतीव गहन प्रेरक प्रवचनों द्वारा दिव्य जीवन का पथ निर्देशित करते रहे। सद्गुरुदेव की दिव्यानुभूति के अनुसार स्वामी चिदानन्द जी के प्रवचन एक सन्त-हृदय के सहजानुभूत अन्तर्ज्ञानयुक्त प्रकटित भावोद्गार हैं।

अब तक के उनके कुछ अप्रकाशित व्याख्यानों को पुस्तिका रूप में प्रकाशित कर श्री स्वामी जी महाराज को जन्म शताब्दी के महान् शुभावसर पर उनके पावन श्रीचरणों में सादर सप्रीत भेंट समर्पित करते हुए हम हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तिका 'जीवन में चरित्र का महत्त्व' अन्य स्थानों में दिये गये पाँच प्रवचनों का संकलन है।

मुख्यालय शिवानन्द आश्रम के अंतेवासियों द्वारा इन प्रवचनों के अभिलेखन, सम्पादन तथा संकलन कार्यों में प्रेमपूर्ण सेवा-सहयोग के लिये हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

परम पिता परमात्मा, हमारे आराध्य श्री सद्गुरु भगवान् श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज और परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के अनन्त शुभाशीर्वाद सब पर रहें!

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

विषय-सूची

१. जीवन में चरित्र का महत्त्व

(१५ जुलाई १९९३ को गुरुपूर्णिमा के अवसर पर दि.जी.सं. ऋषिकेश में दिया गया प्रवचन)

उज्ज्वल आत्मस्वरूप, परम पिता परमात्मा की दिव्य अमर सन्तान !

हमारे समक्ष साधकों के रूप में विराजमान आप सब, हमें अपने दर्शन देकर एवं हमें आशीर्वाद करने वाले अजर अमर अविनाशी आत्मा ! अभी स्वामी प्रेमानन्द जी ने बोला, 'अभी स्वामी चिदानन्द जी, दिव्य जीवन संघ के परमाध्यक्ष, आपको आशीर्वाद देंगे' यह बिल्कुल गलत है। आप धन्य आत्मस्वरूपों के दर्शन करने एवं आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए यह दास यहाँ पर आया है।

आप यहाँ पर परिश्रम करके दूर-दूर से आये हैं। आप अपने समय, उपस्थिति, एवं इन सात दिनों में शान्ति पूर्वक श्रवण का भी हमें दान देंगे। इसके वास्ते हम आपको धन्यवाद देते हैं। इतना कष्ट पाकर अपनी उपस्थिति देकर हमारी सेवा स्वीकार कर रहे हैं। इस सेवा के अवसर को हम अपना सौभाग्य समझते हैं, आशीर्वाद और अनुग्रह समझते हैं। इस सेवा के द्वारा गुरु महाराज का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए दास आपके सामने है, आशीर्वाद देने के लिए नहीं है।

दूसरी बात-आशीर्वाद किसी से लिया नहीं जाता। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के कर्मों द्वारा आशीर्वादित भी होता है, और अभिशापित भी होता है। सबसे बड़ा भारी, सबल और प्रबल आशीर्वाद है जिसके फलस्वरूप आप कहाँ-कहाँ से यहाँ तक पहुँचे हैं। इसके साथ ही आपकी मेहनत और आपका व्यवहार है। उससे एक व्यक्ति जितना आशीर्वादित हो सकता है उतना अन्य किसी भी आशीर्वाद से लाभान्वित नहीं हो सकता। अन्य व्यक्तियों से प्राप्त होने वाला आशीर्वाद भी स्वयं अपने द्वारा प्राप्त किया गया एक आशीर्वाद है।

और तीसरी बात यह है कि दुनिया भर के सन्त-महापुरुषों का आशीर्वाद प्राप्त करके भी यदि अपने जीवन को ठीक दिशा में नहीं चलाया तो सब आशीर्वाद ना के बराबर हैं। यदि फूटे घड़े में पानी भरने की कोशिश की जाये तो कभी भी भरेगा नहीं, ऐसे ही यह आशीर्वाद हो जाएगा। आपको क्या-क्या आशीर्वाद नहीं मिले हैं!

इसका वर्णन करने के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। समस्त जगत् में अग्रगण्य दार्शनिक जगद्गुरु आदि शंकराचार्य जिनको पूरी की पूरी - विश्व-मानवता मानती है, भारतीय, पाश्चात्य देशों के सभी मानते हैं, वे • कहते हैं कि मनुष्यत्व प्राप्त करना ही एक बहुत बड़ा आशीर्वाद है, यह साधारण बात नहीं है। और फिर भारतभूमि में जन्म लेना जो पुण्यभूमि है और हमारी मातृभूमि है।

पूरे विश्व भर में एक हमारा ही राष्ट्र और संस्कृति है, जिसमें कहा गया है कि मानव 'दिव्य' है। मानव का यह व्यक्तित्व गौण है, किन्तु मुख्य एवं वास्तविक व्यक्तित्व दिव्यता है। क्योंकि उन्होंने इसे देखा है, अनुभव किया है और स्वयं साक्षात् अनुभूति के आधार पर यह घोषित किया है। हर जीवात्मा, हर मानव, व्यक्ति, परमात्मा का अंश है। परमात्मा परिपूर्ण दिव्यता का सागर है, उनका अंश होने के कारण आप भी परिपूर्ण रूप में दिव्य हैं। आपका निज स्वरूप, असली नित्य व्यक्तित्व, यह तात्कालिक मानव व्यक्तित्व नहीं है। जन्म लेने से पूर्व भी यह व्यक्तित्व नहीं था, मृत्यु के बाद भी यह नहीं रहेगा। इसलिए यह केवल तात्कालिक मुसाफिरी का एक व्यक्तित्व है।

जैसे नाटक में कोई व्यक्ति वेश बदल कर विशेष व्यक्तित्व की भूमिका अदा करता है। यह भूमिका निभाने से पूर्व वह कुछ और था, मंच पर कुछ और बना, और उसके बाद पूर्व में जैसा था वैसा ही बना। इस प्रकार यह तात्कालिक व्यक्तित्व गौण व्यक्तित्व है, नित्य व्यक्तित्व आपकी दिव्यता है। सदा-सर्वदा, अनादि-अनन्त काल से आप परम पिता परमात्मा, जो परब्रह्म कहलाता है, उनके एक अंश हैं।

केवल भारतवर्ष ने मानव व्यक्तित्व के बारे में जानकर अनुभव किया और घोषणा करके सर्व विश्व मानवता को आशीर्वादित किया। ये खोज हमारी वैज्ञानिक खोज है। यह आविष्कार बाह्य भौतिक जगत् के विषय में नहीं है। आप ही का आन्तरिक अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म अव्यक्त जो क्षेत्र है, उसका आविष्कार है। आपके पूर्वज शून्य में बहुत आगे गये थे। पूरे के पूरे जगत को देखा, परीक्षा की, इसमें अन्तिम वास्तविक विश्लेषण में पाया कि इस जगत में कोई तथ्य नहीं है।

इसका अल्प उपयोग है, किन्तु उच्च प्रयोजन किसी वस्तु, तत्त्व में नहीं है। जो हर इन्सान चाहता है वह सुख और शान्ति प्रदान करने की क्षमता, सृष्टि किये हुए इन वस्तु-पदार्थों में नहीं है। कुछ आराम भी देगा और साथ ही कुछ परेशानी भी देगा। सभी वस्तुएँ पहले अच्छी लगती हैं, किन्तु बाद में अशान्ति का कारण बन जाती हैं। मानव सुख-शान्ति, तृप्ति-सन्तोष चाहता है, दुःख को नहीं चाहता। दुःख का अभाव और सुख का अनुभव, यही मानव मात्र की चाहना है।

पशु भी आराम चाहता है। शीतकाल में ठंड होती है, तो वह गर्मी को चाहता है, धूप सेवन करता है। गाय, भैंस, बकरी, कुत्ता, बिल्ली आदि किसी को भी देख लें-ग्रीष्म ऋतु में कुत्ता भी गंगाजी के थोड़े पानी में जाकर खड़ा हो जाता है। सभी पशु पानी के नजदीक पेड़ की छाया में विश्राम करते हैं। सर्वसाधारण जीवित वर्ग सभी आराम चाहते हैं।

किन्तु ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की गयी किसी वस्तु में भी स्थायी सुख प्रदान करने की क्षमता नहीं है। भूख लगी, इस संकट को मिटाने के लिए आहार आपको तात्कालिक तृप्ति-सन्तोष दे सकता है। लेकिन ४-६ घण्टे के बाद दुबारा भूख लग जाती है, सब कुछ अपूर्ण है। हमारी संस्कृति में यह कहा गया है कि यदि तुम परिपूर्ण रूप में, सदा के लिए नित्य-शाश्वत सुख प्राप्त करना चाहते हो तो नित्य तत्त्व की खोज करनी पड़ेगी, जिसका स्वरूप केवल अमिश्रित शतशः आनन्द स्वरूप है।

'ऐसी कोई वस्तु है, जिसको प्राप्त करके शाश्वत-अनन्त आनन्द में स्थापित हो सकें?' वे बोले, 'है! है क्यों नहीं, जरूर है।' 'कैसे?' 'हम जानते हैं, अनुभव के आधार पर कहते हैं कि एक ऐसा महान् परिपूर्ण दिव्य तत्त्व है, आनन्दम् ब्रह्मेति प्रजायेत परमानन्द, नित्यानन्द, अनन्त, अवर्णननीय आनन्द है।' इस आनन्द का वर्णन करने की कोशिश से व्यक्ति हार जायेगा। पूरी पृथ्वी, पूरे भूमण्डल का एक कागज़ बनाकर बिछा दें, पूरा सागर स्याही बन जाये, विश्व के विशाल वृक्ष जो आकाश को छूते हैं, उनकी कलम बना दी जाए तो साक्षात् सरस्वती भी यदि इस अवर्णनीय आनन्द को युग-युगान्तर तक लिखने बैठे तो लिख नहीं सकेगी, थक कर हार जाएगी।

आनन्द की अनुभूति क्या है? स्पष्ट बोलने में कोई शंका नहीं है। हम तर्क नहीं देते, जो जानते हैं, उसी को बोलते हैं। नित्य तत्त्व परिपूर्ण दिव्य तत्त्व है, सत्य है, शिव है, सुन्दर है। इसको प्राप्त करके तुम शहनशाह बन जाओगे। यहीं पर आनन्दित हो जाओगे। संसार का कोई दुःख, शोक, संकट तुम्हारे पास नहीं आ सकता। भारतवर्ष पुण्यभूमि है, आपकी मातृभूमि है। आध्यात्मिक भारत इस स्थूल जगत का हिस्सा नहीं है, जगत से परे इस जगत की सृष्टि से पूर्व, एक परात्पर तत्त्व है।

स्वामी विवेकानन्द जी तीन वर्ष के बाद जब पाश्चात्य देशों से वापिस आये, तमिलनाडु के एक शहर के पत्रकार ने पूछा, 'स्वामी जी आपने पूरे भारत के कोने-कोने में बस्ती, ग्राम, जिला, प्रान्त का भ्रमण किया, जनता के साथ मिले। भारत की हालत को जितना आप जानते हैं, उतना और कोई नहीं जानता, आपको सारा अनुभव है। तीन, साढ़े तीन वर्ष आप पाश्चात्य देशों में रहकर आए हैं। वहाँ जाने से पूर्व भारतवर्ष के प्रति आपके क्या विचार थे और लौटने के बाद भारतवर्ष के प्रति आपके क्या ख्याल है?' कुछ उद्देश्य रखकर के ही पत्रकार सवाल पूछते हैं। पत्रकार ने सोचा होगा स्वामी विवेकानन्द दुःख-शोक प्रकट करेंगे। पाश्चात्य जगत की जगमग, चकाचौंध को देखकर कहेंगे कि उनकी तुलना में भारतवर्ष कुछ भी नहीं है। भारतवर्ष पिछड़ा राष्ट्र है, गरीब और अनपढ़ लोग हैं।

स्वामी विवेकानन्द ऊँचे कद के नहीं थे, किन्तु सीधे तनकर पत्रकार को कहा, 'आप पूछते हैं मेरा भारतवर्ष के प्रति क्या विचार है? भारतवर्ष के प्रति मेरा अति प्रेम और सम्मान का भाव है। भारतवर्ष केवल मात्र मेरी मातृभूमि ही नहीं वरन दिव्य भूमि है, पूजनीय है, आराधनीय है। मिट्टी का कण-कण मेरे शिरोधार्य है।' स्वामी जी बड़े विचारक थे, भावुक नहीं थे। कॉलेज के समय में कट्टर नास्तिक विचारों के थे। भगवान् की पूजा, घण्टी, आरती को कुछ भी महत्त्व नहीं देते थे। उनके सहपाठी आस्तिक प्रकृति के थे किन्तु स्वामीजी भगवान् की भक्ति और विश्वास को अपनी जोशीली बहसबाजी से खण्डित कर देते थे। सब दुःखी होकर कहते थे, 'नरेन्द्र ऐसे कैसे नास्तिक हो गया है?' ऐसे स्तर वाला नरेन्द्र अब स्वामी विवेकानन्द बनकर पत्रकार के प्रश्नों का उत्तर दे रहा है। ऐसे राष्ट्र का नागरिक बनकर हमें परम सौभाग्य मिला है, हम पूर्णरूप से आशीर्वादित हैं।

इस सप्ताह में आप ऐसा मत सोचना कि हम किसी नये या अपरिचित स्थान में हैं, यह आपका आध्यात्मिक घर है। इसके संस्थापक सद्गुरु भगवान्, स्वामी शिवानन्द जी महाराज हैं जो आपके दादा जी हैं।

स्कूलों में पाठ्यक्रम के आधार पर प्रपंच के बाह्य क्षेत्र के विषयों में समझाया जाता है। इतिहास, भूगोल, अंकगणित, सामान्य विज्ञान, जीव विज्ञान, भौतिक शास्त्र आदि के बारे में जानकारी देते हैं। उसी को परीक्षा में लिखना पड़ता है। आगे कॉलेजों में जाकर एक विषय पर विस्तार से विशेष जानकारी दी जाती है। लेकिन अपने जीवन को सम्यक दिशा में ले जाने की जो कला और शास्त्र है, वह स्कूल, कॉलेज और परिवार में से कोई भी नहीं सिखाता। लेकिन मैं साधना-सप्ताह में केवल मात्र आपके विषय में ही बोलूँगा। आपके विषय में आपको परिचय देना चाहूँगा। जीवन के उद्देश्य के सम्बन्ध में गहराई से जानकारी दूँगा। अन्य विषयों पर मैं नहीं कहना चाहूँगा। क्योंकि अन्य विषयों की जानकारी प्राप्त करते-करते आपकी खोपड़ी थक गयी है। पता नहीं, कितने समय से कितने विषयों को मस्तिष्क में भरते आ रहे हो। सामान्य मानव का मस्तिष्क जैसे कम्प्यूटर हो गया है। ज्यादा से ज्यादा इसको भर लेना है। परीक्षा के समय दिमाग से निकाल करके सफेद को काला बनाना है, एवं कुछ न कुछ उपाधि को प्राप्त करना है। किन्तु हजारों की संख्या में बेरोजगारी है। एम.ए., एम.एस.सी के लिए प्रार्थनापत्र लेकर इधर-उधर भटकते रहते हैं। शिक्षा प्रणाली में अपने आप को जानने का कोई प्रबन्ध नज़र नहीं आता। यदि हमारे बारे में हमारा ज्ञान शून्य है, और दुनिया भर का ज्ञान भरपूर है तो वह ज्ञान, ज्ञान नहीं है। इसको कहते हैं, 'दीपक तले अंधेरा'।

ऐसी परिस्थिति में आपके अन्दर समस्या, उलझन, झमेला, तनाव आ गया तो आपको मालूम नहीं है कि कैसे इसका मुकाबला करें, कैसे हल निकालें। न तो आपने समझने की कोशिश की और न ही किसी ने आपको समझाया। ऐसी परिस्थिति में आप असहाय हो जाते हैं, भ्रमित हो जाते हैं, मालूम नहीं पड़ता क्या करना चाहिए। प्राचीन काल के एक दार्शनिक ने कहा है-मानव के अध्ययन का महानतम विषय मानव स्वयं ही है। इनसान के लिए सबसे बड़ा, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य विचार क्या है? इनसान के लिए अपने बारे में जानकारी रखना और उसे समझना एक महत्त्वपूर्ण विद्या है। ज्ञान से आदमी जानकार बनता है, किन्तु जानकारी से समझदारी नहीं आती। ज्ञान की असली शुरुआत तब है, जब आदमी खुद को समझने लगता है।

हाँ, इतना तो है कि सामान्य विज्ञान, आहार विज्ञान, जीवकोष विज्ञान के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी होनी चाहिए। क्योंकि अन्ट-शन्ट चीज खाने से अपच हो जाता है, गैस रुक जाती है, पेट खराब हो जाता है तो वैद्य, हकीम, डॉक्टर के पास जाना पड़ता है, जा कर कहते हैं, 'डॉ. हमें बहुत पीड़ा हो रहा है, सहन नहीं हो रहा है।' हमें इतना भी तजुरबा-अनुभव नहीं है कि इस पीड़ा से स्वयं को कैसे मुक्त करें। हमें अपनी प्रकृति के बारे में मालूम नहीं है, अनुकूल आहार के बारे में पता नहीं है। कैसा कितना आहार खाने से हम आराम से स्वपाचन कर सकते हैं, यह सब सोचने-समझने की कोशिश नहीं करते।

चार बात किसी ने हमारे बारे में बोल दिया तो अशान्ति, व्याकुलता हो जाती है। खाने की इच्छा नहीं होती, रात में निद्रा नहीं आती, उद्विग्न हो जाते हैं। अन्दर की मशीनरी पर इसका इतना प्रभाव पड़ता है कि उद्विग्न हो जाते हैं। 'उद्विग्न क्यों हो जाते हैं, इसको समझ करके, सामना करके क्या मैं अपने आप में सफल नहीं हो सकता हूँ?' यह सोचने की कभी कोशिश ही नहीं की। मौलिक मनोविज्ञान को अपने आप सीखना चाहिए। स्कूलों में ये सब नहीं हैं और न ही घर में कोई समझाने वाला है। न माता-पिता ही समझाते हैं, वह अपने काम-धन्धे में फँसे हुए हैं। अपने आपको जानना जीवन में एक केन्द्रीय स्थान रखता है।

बाहर और अन्दर के बारे में दो कार्य-प्रणालियाँ हैं। फ़िजिकल और बायोलौजिकल। एक शरीर के बाह्य अंगों से सम्बंधित है, दूसरी आन्तरिक अंगों से, जैसे कलेजा, मस्तिष्क, पेट, आँतें, जिगर इत्यादि कैसे काम करते हैं। फिजिकल है, बाह्य शरीर विज्ञान और फिजियोलोजी शरीर के आन्तरिक कोषों की कार्य-प्रणाली जो अन्दर

चल रही है, अन्दर छिपी है। इन दोनों विज्ञानों की जानकारी के साथ तीसरा साइकोलॉजी, अर्थात् मन का विज्ञान है। २४ घण्टे यह मन अपने अन्दर मनमाने रूप से काम करता है, उसे कोई रोक नहीं सकता। उसके बारे में भी समझ होनी चाहिए। आप निद्रा करने के लिए जाते हैं, सो जाते हैं, तब भी इस मशीनरी का वेग, इसकी गति समाप्त नहीं होती। बाह्य प्रपंच जब अदृश्य हो जाता है, तब यह आन्तरिक प्रपंच को खड़ा करके, आपको वहाँ पर इधर-उधर ले जाता है। इसमें मन सक्रिय रहकर विचित्र अनुभव देता है, जिसे स्वप्नावस्था कहते हैं। बाहर की निद्रा भी आ गयी, स्वप्न भी खत्म हो गया, तब जाकर के आप गाढ़ निद्रा की अवस्था, सुषुप्ति में पहुँचते हैं। सवेरा होते ही सारा कार्य व्यापार फिर चालू हो जाता है, इसलिए थोड़ा बहुत इसके बारे में समझ पाने की आवश्यकता है। आवश्यकता क्यों है?

मानव समुदाय में एक अच्छा व्यक्ति बनकर कार्य करना है, तब यह समझ आपको आवश्यक है, 'मेरे अन्दर क्रोध आया, इसको कैसे निकाल सकता हूँ? मेरे अन्दर किसी के प्रति द्वेष-घृणा का भाव आया, उसका कैसे निर्मूलन करके मुक्त हो सकता हूँ?' इसको समझ कर, अपनी मालकियत को जानकर अपने व्यक्तित्व में किसी का गुलाम बनकर नहीं रहना है। अपने ऊपर आपका अधिकार तभी होगा जब आप स्वयं पर नियंत्रण कर सकेंगे। पेट भरके खाना खा लिया, किन्तु जिह्वा और भी खाने की इच्छा कर रही है, तब यह विचार करना कि नहीं यह हमारे लिए बाधा करेगा, जिह्वा की मैं नहीं मानूँगा। अपनी बुद्धि विवेक की बात मानकर खाना बन्द करूँगा। ऐसे मिताहारी, संयमी सदा सुखी रहते हैं। जिसके अन्दर संयम नहीं है, वह मन की चाल और इन्द्रियों की गति को नहीं समझता, उसकी आड़ में अति करके अपने आप को संकट में डाल देता है। अपने स्वास्थ्य को खराब कर लेता है।

इसलिए मानव के लिए शारीरिक विज्ञान, शरीर के आन्तरिक विज्ञान और मनोविज्ञान को समझना अत्यन्त आवश्यक है, अनिवार्य है, मुख्य है। एक आदमी के अन्दर यदि स्वार्थ आकर अड्डा जमाता है, तो उस में अहंकार और अभिमान आ जाता है। उसकी बाहर सबके साथ टकराहट रहती है। जो सामंजस्य के बिल्कुल विपरीत है। समाज में १०-२० आदमी के साथ रहना है, जंगल की बात नहीं है। अपने स्वार्थ को छोड़कर सबका चिन्तन करना है। मेरे जैसे और भी हैं, जैसे मैं अपने वास्ते चाहता हूँ, वैसे ही दूसरे भी अपने वास्ते चाहते हैं। सबके अनुकूल बन कर, सबसे समन्वय करके चलना चाहिए। हमारे लिए भी अनुकूल हो, दूसरे के लिए भी प्रतिकूल न हो, ऐसा बर्ताव करना चाहिए।

परस्पर का व्यवहार, विज्ञान भी है, कला भी है। इसको सीख कर जो आदमी व्यवहार क्षेत्र में कार्य करता है उससे सबको सुख-सुविधा और सुकून मिलता है। उनके रहने से वातावरण-पर्यावरण सुखी हो जाता है, यही इन्सानियत है।

मैं आपको निकट पूर्व इतिहास के मार्ग में ले जाना चाहता हूँ। इसको स्मृति की पगडंडी कहो या गली कहो । आप सब टिहरी गढ़वाल, उत्तरकाशी, देहरादून आदि विभिन्न स्थानों के कॉलेजों से आए हुए हो। टिहरी-गढ़वाल जिला था ही नहीं, भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य का यह हिस्सा नहीं था, उससे बाहर था। टिहरी गढ़वाल राजघराने के क्षेत्र में था। लक्ष्मणझूला भी ऐसा नहीं था, एक ओर लकड़ी से बना हुआ था। आदमी बद्रीनाथ की यात्रा के लिए अपना बोझा अपने कन्धों पर ले जाता था। गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ जाने के लिए बस, टैक्सी आदि नहीं थीं, हरिद्वार से ही पैदल यात्रा करनी पड़ती थी।

सन् १९२३ की बात है, दक्षिण भारत का जन्मा एक अच्छा लिखा-पढ़ा व्यक्ति युवावस्था में डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करके ज्ञान हासिल कर, अपने कार्य वास्ते भारत छोड़कर मलाया सिंगापुर गए। उस समय यह सब ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत था। मलाया जाकर ११-१२ वर्ष पूर्ण अर्पित होकर डॉक्टर का कार्य बड़ी हमदर्दी से किया। डॉक्टर साहब की करुणा, दानशीलता, उदारता, संवेदनशीलता और धर्मपरायणता असीम, असाधारण

एवं अनूठी थी। करुणामय हृदय होने से लोगों का दर्द सहन नहीं कर सकते थे। २४ घण्टे, रात-दिन उनकी सेवा करते रहते थे। लोग उस समय उनको उनके नाम से नहीं पुकारते थे, उन्हें 'डॉक्टर धर्मभूषण' कहते थे। गुरुदेव का पूर्वाश्रम का नाम डॉक्टर कुप्पु स्वामी था, वे ऐसे धार्मिक प्रकृति के थे। २४ घण्टे उनके घर ताला-चाबी नहीं रहता था, सबके लिए उनका द्वार खुला रहता था।

लेकिन भगवान् उनसे अन्य क्षेत्र में कार्य करवाना चाहते थे। ११-१२ वर्ष की प्रेक्टिस के बाद उनको महान् वैराग्य उत्पन्न हुआ। बड़ी अद्‌भुत रीति से अपनी प्रेक्टिस, पैसा, भविष्य को तिलाञ्जलि देकर अत्यन्त वैराग्य के साथ, मुमुक्षु-साधक बनकर भारतवर्ष में आ गये। नासिक, वाराणसी, इलाहाबाद होते हुए हरिद्वार, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड की तरफ प्रस्थान किया। सन् १९२३ में कुछ समय ऋषिकेश रामनगर में रहे, जहाँ पर आजकल आई.डी.पी.एल है। १९२४ में गंगा जी में भयंकर बाढ़ आने से लक्ष्मणझूला बह गया। गुरुमहाराज रामनगर को छोड़, नाव द्वारा गंगा पार कर स्वर्गाश्रम में जाकर बसे। १९२४ से १९३४ तक अखण्ड रूप से अत्यन्त कठिन तपस्या, तितिक्षा, योगाभ्यास, मौनव्रत धारण करके बारह-बारह, सोलह-सोलह घण्टे तक ध्यान में बैठते थे। क्षेत्र से भिक्षा में सूखी रोटी-दाल लेकर आते थे। ध्यान को छोड़कर उन्हें क्षेत्र में जाना अच्छा नहीं लगता था। भजन-भाव में विघ्न आता था। क्षेत्र में भिक्षा के लिए लाइन लगती थी। जब सब साधु क्षेत्र से भिक्षा लेकर चले जाते, तब अन्त में जाकर मैनेज़र को कहते, 'यदि भिक्षा ज्यादा बच गई है तो हमें दे दो।' मैनेजर कहता, 'हाँ, हाँ, ले जाओ।' बचा भोजन वैसे भी गाय, कुत्ते, बन्दरों को देना पड़ता।

डॉक्टर थे, एक घण्टा सेवा का काम करते थे। क्षेत्र से रोटी ले जाकर ऊपर किसी आले पर रख देते। ३ दिन कुटिया से बाहर नहीं आते थे। भूख लगने पर रोटी को कमण्डल में चूर कर गंगा जल में भिगो देते थे। नरम हो जाने पर अपनी क्षुधा निवृत्ति कर लेते थे, और गहरे ध्यान में बैठ जाते थे। क्षेत्र में आने-जाने से विक्षेप और समय बर्बाद होता था। भजन, ध्यान, तपस्या करके 'आत्मज्ञान' को प्राप्त किया। उस अवर्णननीय अवस्था को प्राप्त करके भरपूर मगन हो गए।

पहले से ही सदैव अपने हृदय में दूसरों के हित के लिए ही सोचते थे, कैसे उनकी सेवा करूँ, कैसे उन्हें सुखी बनाऊँ। विश्वप्रेम, परोपकार की भावना उस समय में भी उत्पन्न हुई। जिस आनन्द, शान्ति को मैंने प्राप्त किया है, इस अनुभव को केवल अपने अन्दर ही न रखूँ बल्कि सबको बाँटू, ऐसा सोच कर दुनिया को सम्बोधित करके सब बाँट दिया। उस समय यह आश्रम, यह संस्था नहीं थी।

१३ जनवरी १९३६, मकर संक्रान्ति के दिन दिव्य जीवन संघ की स्थापना हुई। स्थापना के बाद उनका एकमात्र उद्देश्य रहा कि आधुनिक जगत की दुनिया को, भारतीय आत्म-बन्धुओं को मार्ग दर्शन देकर उनका जीवन सार्थक बनाएँ, शुभ बनाएँ। हर एक आदर्श व्यक्ति बनकर समाज को लाभान्वित करे, उनके रहने से मानव समाज की मूल्यता बढ़ जाये। अपने लिए भी सुखी जीवन हो और अपने द्वारा दूसरों का भी जीवन सुखी हो।

एक बात मैं कहूँगा, सफल जीवन की बुनियाद सचरित्र, सदाचरण में है। मनुष्य और पशु में अन्तर ज्ञान का है। ज्ञान विहीन मानव पशु तुल्य है, ज्ञान को प्राप्त किया तो पशु से श्रेष्ठ है। मैं कहता हूँ, ज्ञान-सम्पन्न मानव भी हो, लेकिन चरित्र विहीन है, तो वह पशुओं से भी नीचे चला जाएगा, राक्षस हो जाएगा। क्योंकि वह ज्ञान का दुरुपयोग करेगा, दूसरों की हिंसा करेगा, पीड़ा देगा।

आजकल बहुत चतुराई का ज्ञान आ गया है जिससे बुद्धि, दुर्बुद्धि हो गयी है। मानवता को इतना परेशान कर सकते हैं, सोच भी नहीं सकते, योजनाबद्ध अपराध करते हैं। आप जानते हैं, पाश्चात्य विज्ञान से हमारा भूगोल कितना अभिशापित हो गया है। विज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँच कर पूरे के पूरे मानव समुदाय को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है।

गुरुदेव ने संस्था को बनाकर सदस्यता के नियम रखे। इसमें वर्ण, राष्ट्रीयता, शैक्षणिक योग्यता, सामाजिक परिस्थिति, जाति, सम्प्रदाय, स्त्री, पुरुष का कोई भी सवाल नहीं है, तुम कहीं से भी हो, कोई बाधा नहीं है।

नियम यह पालन करने हैं, 'मैं शपथपूर्वक लिख कर देता हूँ कि, (१) मैं अपने जीवन में सत्य परायण रहूँगा। (२) अहिंसात्मक व्यवहार रखूँगा, किसी की हिंसा नहीं करूँगा। (३) मेरा चरित्र-आचरण पवित्र रहेगा, काया वाचा मनसा मैं पवित्र रहूँगा। मुझे दिव्य जीवन संस्था का सदस्य बनाइये।' बस इतनी ही शर्तें हैं-सत्य, पवित्रता, करुणा-यह शपथ लेने पर संस्था में आने के लिए स्वागत है। ये शर्तें क्यों रखीं ? सर्वधर्म का यह सारभूत तत्त्व-सारामृत यह तीन महान् दिव्य सगुण हैं। आपके उज्ज्वल ज्ञानी पूर्वजों ने आपको कहा है,

'यदि मोक्षमिच्छसि चेत् तात विषयान् विषवत् त्यज, ब्रह्मचर्यम् अहिंसा ब्रतम् सत्य पीयूषवत् भज।' पवित्रता, सत्यपरायणता और अहिंसा को अमृत तुल्य समझकर अपनाओ, आचरण में उतारो। १९३६ से १९६३ तक गुरुदेव स्वयं संस्थापक बनकर संस्था का संचालन करते आये हैं। १४ जुलाई १९६३ को अपना कार्य समाप्त करके, जहाँ से आए थे, वहीं महासमाधि लेकर लीन हो गये हैं। यह उनका पुण्यतिथि आराधना दिवस है। १४ जुलाई अंग्रेजी तारीख से नहीं मनाते हैं, गुरुपूर्णिमा के बाद ९वें दिन महोत्सव मनाते हैं।

गुरुदेव बड़े उदार पुरुष थे, बड़े प्रसन्नचित्त-बड़े प्रसन्नचित्त ! कोई भी उनसे प्रथम बार मिलकर १-२ मिनट बात कर लेता तो उनको ऐसा लगता था कि वह उनको जन्म से ही जानता है। इतना सम्मोहन था, एकात्मकता थी। ४-५ मिनट के बाद उनसे विदा होने का समय आ गया तो बस अविरल आँसू बहते थे। विश्व मानवता के साथ अपनत्व एवं आध्यात्मिक एकता थी, बड़े अद्‌भुत पुरुष थे। आप जो कुछ भी अभी प्राप्त कर रहे हैं, सब उनकी ही देन है। हम केवल मात्र उनके दिव्य चरणों के सेवक है, सेवा का सौभाग्य हमें प्राप्त है।

इस वक्त परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उनके दिव्य अनुग्रह की वर्षा आप सब पर हो। हमारे भगवद् तुल्य गुरु महाराज स्वामी शिवानन्द जी विश्व प्रेमी, विश्व सेवक, दिव्य देवता पुरुष अब भी अदृश्य रूप में विराजमान हैं। उनका स्नेहमय आशीर्वाद अब भी बना हुआ है, आगे भी बना रहेगा।

आपका आदर्श जीवन हो, भविष्य उज्ज्वल हो! आपके आदर्श जीवन द्वारा हमारा प्रिय भारतवर्ष लाभान्वित हो! वर्तमान भारतवर्ष के ऊपर ग्रहण धूमिलता आयी हुई है, उससे मुक्त करने में आपका सबल-सक्षम सहयोग हो। आप भारतवर्ष के छात्र हैं, निकट भविष्य की आप ही प्रजा हैं। भारतवर्ष का ऐश्वर्य खण्डित पदार्थों में, सोना-चाँदी, हीरा-नवरत्न में नहीं है, आप लोगों से है। आपके दिव्य व्यक्तित्व से ही भारत लाभान्वित होगा, निकट भविष्य ऐश्वर्यशाली होगा। यह सौभाग्य आपको प्राप्त है, इसका सदुपयोग करके भारतवर्ष के उद्धारक बनें। गुरुमहाराज आपको आशीर्वाद दें। परम पिता परमात्मा की उपस्थिति में हम सब एकत्रित हुए हैं, उनका अनुग्रह आप पर हो!

हरि ॐ तत् सत्।

२.आदर्श जीवन

('भावनगर, गुजरात में १९ मार्च, १९८७ को दिया गया प्रवचन')

उज्ज्वल आत्म स्वरूप, परमपिता परमात्मा की दिव्य अमर सन्तान !

भावनगर में स्थित स्थानीय 'दिव्य जीवन संघ शिशु विहार' के प्रांगण में यह सुन्दर ज्ञान यज्ञ सम्पन्न हो रहा है। इस ज्ञान यज्ञ में उपस्थित श्रोतागण के रूप में मुमुक्षु, जिज्ञासु, भगवद् प्रेमी, धर्म निष्ठ सज्जन सत्संगी, आप सब दिव्य अमर आत्माओं की सेवा में छोटी आहुति अर्पण करने जा रहा हूँ। आपके शरीर रूपी मन्दिर में अन्तःस्थित जो प्रभु हैं, उनके चरणों में भ्रातृभाव एवं सादर प्रेम के साथ, आराधना के रूप में यह आहुति पहुँच जाये, स्वीकार हो जाये, यही प्रार्थना है। हमारा भारतवर्ष बहुत विचित्र, विशिष्ट, अनोखा और अद्‌भुत देश है और हमेशा रहेगा। इतिहास के पूर्व प्राचीन वेदों के युग में महर्षियों ने विश्व जीवन एवं मानवता के पीछे एक गूढ़ अनिर्वचनीय रहस्ययुक्त तत्त्व को बताया है, जो देशकाल से परे, अनादि, अनन्त एवं विचित्र है। जहाँ मन नहीं पहुँच सकता, वाणी नहीं पहुँच सकती, जिसे बुद्धि नहीं ग्रहण कर सकती। उस परात्पर तत्त्व को उन्होंने अनुमान लगाकर नहीं खोजा है, बल्कि अद्‌भुत अनुभूति के रूप में प्राप्त किया है। इस अनुभूति द्वारा विश्व-जीवन के रहस्य उनके सामने खुली किताब जैसे बन गये। वे त्रिकालज्ञ बन गये, उनके ज्ञान से कोई चीज़ छिपी नहीं थी अर्थात् वे सर्वज्ञ बन गये।

इस सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके उन्होंने विचित्र, अद्‌भुत अतुल्य बात को कहा, 'हे मानव! तुम तो अमर आत्मा हो। अभी तक तुम स्वप्न में रहे, भूल में रहे कि मैं जन्म-मृत्यु के साथ रहने वाला एक छोटा-सा क्षुद्र व्यक्ति हूँ। नहीं-नहीं-नहीं। तुम्हारे लिए न जन्म है, न मृत्यु है। तुम तो एक अमर आत्म तत्त्व हो। देश काल, नाम रूप से परे हो!'

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। (गीता /२-२०)

उन्होंने आपको आपके बारे में ज्ञान दिया, जागृति दी, 'देखो प्यारे आप एक ऐसा अद्‌भुत तत्त्व हो जिसे अस्त्र-शस्त्र घायल नहीं कर सकते, अग्नि दहन नहीं कर सकती, पानी भिगो नहीं सकता, पवन सुखा नहीं सकता। तुम अजर, अमर, अविनाशी, नित्य-शुद्ध, नित्य-बुद्ध, नित्य-परिपूर्ण आत्म तत्त्व हो। ऐसा होने से तुम्हारे लिए शोक कहाँ से आया? चिंता कहाँ से आयी ? भय कहाँ से आया ? बन्धन का कोई प्रश्न ही नहीं है।' उन्होंने अपनी स्वयं की अनुभूति के आधार पर ऐसे यथार्थ सत्य को हमारे समक्ष प्रकट कर दिया है। वे पाश्चात्य दार्शनिकों की तरह बहुत गहरे चिंतन और तर्क आदि के आधार पर इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे हैं। ऐसा नहीं है, कि पाश्चात्य देशों में परात्पर सत्ता का अनुभव करने वाले सन्त नहीं हुए हैं, वहाँ भी कतिपय हैं, कोई-कोई हैं। हमारे यहाँ इस अनुभूति को प्राप्त करना प्रत्येक मानव का मुख्य कर्तव्य है। 'इसका अनुभव करने पर ही मानव जीवन सार्थक है, अन्यथा उसका जन्म व्यर्थ है,' निर्भय होकर ऐसी घोषणा की है। अज्ञान अन्धकार के बन्धन में जन्म लेना, उसी अज्ञान-अन्धकार में जीवन भर रहना और उसी अन्धकार में मर जाना, यह जीवन नहीं है, धिक्कार है ऐसे मानव जीवन को। भगवान् ने मानव को विचार एवं बुद्धि-शक्ति दी है, उसका सदुपयोग करके अज्ञान के अन्धकार से बाहर आकर ज्ञान के प्रकाश में आना है। बन्धन की जंजीरों को तोड़कर, जीवन्मुक्त बन कर नहीं गया तो हीरे जैसे जीवन को व्यर्थ खो दिया। 'महती विनष्टि!' इससे बढ़कर कोई विनाश नहीं है।

श्रुति-स्मृति में, बड़े-बड़े महापुरुषों ने, जगदुरु आदि शंकराचार्य जी ने कहा है, 'हे मानव! तुम केवल मानव नहीं हो, तुम दिव्य हो, तुम देवता हो। उस अनादि, अनन्त, असीम सत्ता के तुम अंश हो। अनन्त सच्चिदानन्द सागर की तुम एक लहर हो। उस अनन्त परम ज्योति स्वरूप परमात्मा की दिव्य उज्ज्वल ज्योतिर्मय किरण हो।' ऐसा दर्शन एवं अनुभूति केवल भारतवर्ष में है, अन्य संस्कृतियों में नहीं है।

मानव की दिव्यता को अनुभव करके मानव मात्र के कल्याण के लिए 'श्रुण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः!' सम्बोधित करके घोषित किया, 'हे मानव ! तुम्हारा जीवन भगवद् साक्षात्कार के लिए है, अन्य जितने भी लक्ष्य हैं, सब गौण हैं। मुख्य लक्ष्य, परम पुरुषार्थ, जिसको प्राप्त करने से ही जीवन परिपूर्ण होगा, वह क्या है? भगवद् साक्षात्कार है, दिव्य अपरोक्षानुभूति है, आत्म ज्ञान है, ब्रह्मज्ञान है। उसको प्राप्त करके सर्व दुःख निवृति कर सकते हो। परमानन्द प्राप्ति, नित्य तृप्ति, कैवल्य मोक्ष साम्राज्य की अवस्था को प्राप्त करना तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है। इस अधिकार को भूलकर क्षणिक सुख के वास्ते पागलों की तरह इधर-उधर भटकते हो। कितनी शोचनीय दशा है, कितनी अफसोस की बात है। उठो, जागो, अपने जीवन की अमूल्यता को देखो, पहचानो। मोती-हीरक जैसे जन्म को व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। 'उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! प्राप्य वरान्निबोधत्।' बहुत सारा चला गया है, जो कुछ बचा हुआ है उसका अच्छी तरह सदुपयोग करके धन्य बन जाओ।' ऐसी चेतावनी, घोषणा और ऐसा सम्बोधन भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है। पाश्चात्य संस्कृति, अन्य समुदायों में ऐसी घोषणा नहीं मिलेगी।

सौभाग्य से हम भारतवर्ष की प्रजा हैं। हमारी इस मातृभूमि के पूर्वजों ने केवल मात्र परात्पर तत्त्व की घोषणा करके इसे नहीं छोड़ दिया है, उसको प्राप्त करने का तरीका भी श्रुतियों, उपनिषदों, वेदान्त के माध्यम से उदाहरणों से, न्याय से, दृष्टान्तों से बताया है। ब्रह्म विद्या मस्तिष्क से पकड़ने वाली चीज़ नहीं है। जिस अनुभूति को

प्राप्त करके वे धन्य, आप्तकाम, कृत-कृत्य हो गये हैं, उसी अनुभूति को क्रमबद्ध वैज्ञानिक रूप से, भगवद् साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए आपके वास्ते विविध प्रकार के शास्त्र बनाये हैं। गुरुदेव बोलते थे कि एक ही प्रकार का कोट-पैन्ट मिस्टर स्मिथ और मिस्टर जॉन हरबर्ट के लिए पूरा नहीं होगा। कोई मोटा होगा, कोई पतला होगा, कोई लम्बा होगा, कोई ठिगना होगा, उसी के अनुकूल कपड़े को बनाना पड़ता है।

कुछ लोग कहते हैं कि आपके सत्य सनातन वैदिक धर्म में घोटाला है। कई सम्प्रदाय शैव, वैष्णव, शाक्त आदि हैं। किन्तु नहीं, ऐसा नहीं है, उसके पीछे एक महान उद्देश्य है। प्रत्येक व्यक्ति में रुचि का, क्षमता का वैचित्र्य है, उनका तारतम्य बैठाने के लिए विविध प्रकार के सम्प्रदाय एवं साधनाएँ हैं। भगवान् की दृष्टि में सब एक हैं। परमानन्द एवं परम शान्ति के भण्डार से कोई वञ्चित न रह जाये, इस लिए प्रत्येक मानव के लिए उचित, सहाय-प्रद एवं सुलभ-साध्य मार्ग बताये हैं। जैसे नारद भक्ति सूत्र, शांडिल्य भक्ति सूत्र, प्रेम मार्ग का शास्त्र, भक्ति योग शास्त्र, ज्ञान योग शास्त्र-वेदान्त विचार मार्ग, महर्षि पतञ्जलि के अष्टांग योग-सूत्र द्वारा ध्यान योग का शास्त्र इत्यादि। स्वयं भगवान् व्यास जी ने ज्ञान योग के लिए ब्रह्म सूत्र, वेदान्त सूत्र शास्त्र बनाया, कुण्डलिनी योग शास्त्र, जपयोग साधना द्वारा भगवद् प्राप्ति। चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन का महत्त्व बताते हुए कहा कि केवल मात्र कीर्तन से ही भक्ति मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, 'कलौ केशव कीर्तनादेव मुक्त संगो भवेत।' गुरुदेव ने, हमारे अन्दर योगाभ्यास सहज रूप में एवं अनायास ही आ जाये, इसके लिए सभी योगों पर सरल ढंग से एवं विस्तार से लिखा है। हमारे पूर्वजों ने उस परम तत्त्व को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक जीवन प्रणाली बनायी है जिसे वर्णाश्रम-व्यवस्था कहते हैं, इसमें चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों के सम्बंध में बताया गया है।

प्रथम आश्रम को ब्रह्मचर्य आश्रम कहते हैं। जैसे इमारत के लिए बुनियाद से ज्यादा कोई मुख्य चीज नहीं है, वह दिखाई नहीं देती, जमीन के अन्दर नीचे दबी रहती है, किन्तु नींव जितनी मज़बूत होगी इमारत भी उतने लम्बे समय तक टिकी रहेगी, इसी तरह इस ब्रह्मचर्य अवस्था अर्थात् विद्यार्थी जीवन में भौतिक विद्या, धर्म शास्त्र और परा विद्या का अच्छी तरह से अभ्यास कर लेना चाहिए जिससे अन्य अवस्थाएँ भी उत्तम तरीके से बिता सकें। प्रपंच हमें अनर्थ में न ले जाये, ठीक दिशा में जायें, सुख को साध लें, दु:ख-संकट में जाकर नहीं पहुँचें, इसके लिए आध्यात्मिक विद्या, उपनिषद्, श्रुति-स्मृति, पुराण, वेदान्त, भागवत, भगवद्गीता आदि का अभ्यास प्रथम अवस्था में कर लेना चाहिए। यह युवावस्था बड़ी चंचल होती है, 'ब्रह्मचारी शतः मर्कट' अर्थात् ब्रह्मचारी सौ बन्दरों के बराबर है। गुरुमहाराज कहते थे कि मन बड़ा शैतान है, उसके फन्दें में फँस जाने से तुम बर्बाद हो जाओगे। इस मन पर नियन्त्रण करने का एक ही उपाय है, सदा उद्यमी रहो। पुरुषार्थ में लगन लगाये रखो। खाली मत रहो, खाली मन शैतान का कारखाना है।

ब्रह्मचर्य अवस्था में गुरु अपने विद्यार्थियों को २४ घण्टे किसी न किसी कार्य में लगाए रखते थे, जैसे पाठ पूजन करना, यज्ञ के लिए समिधा लाना, गुरु पत्नी की सेवा शुश्रूषा करना आदि आदि। किसी भी प्रकार का अवकाश नहीं रहने से जीवन अपने आप संयमी बन जाता था। प्रथम आश्रम में युवकों, विद्यार्थियों के लिए बुनियाद रूप से उत्तम चरित्र की बहुत महिमा है। सदाचारी जीवन, आज्ञापालन, नि:स्वार्थ सेवा, इन्द्रिय निग्रह आदि उत्तम चरित्र के लिए जरूरी हैं और इससे आगे आने वाली तीनों अवस्थाओं का भी प्रबन्धन हो जाता है। १०-१२-१५ वर्ष के बाद गुरुकुल से निष्णात होने के बाद यह ब्रह्मचारी, एक आदर्श गृहस्थ बनने के योग्य बन जाता है।

विद्यार्थियों को मैं विशेष रूप से कह रहा हूँ कि शास्त्रों में ब्रह्मचर्य का धर्म, गृहस्थ का धर्म, वानप्रस्थ का जीवन, यती-संन्यासी का जीवन, सबका विवरण दिया है। मनुस्मृति में, पाराशर स्मृति में, पुराणों में बहुत सारी बातों का विस्तार से वर्णन किया गया है। महाभारत, रामायण में सम्भाषण के द्वारा कई प्रसंगों में विविध आश्रमों, विविध वर्णों के क्या-क्या धर्म है, सब बताये हैं। चारों वर्णों का क्या धर्म है? राजा का क्या धर्म है, प्रजा का क्या धर्म है? बालकों का माता पिता के प्रति क्या धर्म है ? पति का पत्नी के प्रति और पत्नी का पति के प्रति क्या धर्म है? यह सब बताया गया है। आपको यह जानना चाहिए।

दूसरी चीज है, 'धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' शरीर एक यन्त्र है इसमें बलपुष्टि होनी चाहिए, नहीं तो किसी भी क्षेत्र में कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। स्वास्थ्यप्रद अभ्यास करते रहना चाहिए। सबेरे जल्दी उठना, ठण्डे पानी से स्नान करना, आसन-प्राणायाम आदि करना, सूर्य नमस्कार करना, शरीर को वज्रकाय बनाना एवं बल पुष्टि के साथ आरोग्य बनाये रखना। यह अति आवश्यक है।

तीसरी चीज, विद्या अभ्यास करना है, इसमें भौतिक विद्या भी आ जाती है। जीवन यापन के लिए कोई हुनर व्यापार, उद्योग आदि करना। क्षत्रिय के लिए अस्त्र-शस्त्र धनुर्विद्या आदि का अभ्यास। जिस भी क्षेत्र में जाना है, उस विद्या में पारंगत होना है।

ज्ञान की प्राप्ति, शरीर में आरोग्य, बल और पुष्टि की प्राप्ति, सर्वोत्तम पवित्र आदर्श चरित्र की प्राप्ति, इन तीनों को प्राप्त करके जब ब्रह्मचारी दूसरे आश्रम में प्रवेश करेगा तो उसकी शोभा बढ़ायेगा एवं भद्दा कलंक नहीं लगायेगा। सचरित्र होने से सन्तान भी संस्कारी होगी। स्वस्थ शरीर होने से हृष्ट-पुष्ट सन्तान होगी। माँ-बाप दोनों बीमार हों, प्रत्येक सप्ताह में इन्जेक्शन लगाना पड़ता हो तो बालक भी रोगी के रूप में जन्म लेगा। यह भारतीय संस्कृति का आदर्श नहीं है।

गृहस्थ धर्म का शास्त्रों में बहुत विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है, किन्तु मैं चार बातों पर आपका ध्यान केन्द्रित करता हूँ। उदाहरण के लिए-एक लड़की किसी भी परिवार में, कहीं भी रही, लड़का दूसरे परिवार में कहीं भी रहा। वे एक दूसरे से परिचित नहीं थे। पुरोहित या समाज वाले बताते हैं, लड़का बहुत अच्छा है। एम.एस.सी. पढ़ा हुआ है, नौकरी करता है। लड़की बहुत कुलीन है, बी.ए. पढ़ रही है। दोनों का विवाह करके, दो परिवारों का मिलन करवा दिया। दोनों एक स्थान में रहकर पारिवारिक जीवन जीने लगे-यह स्थूल दृष्टि है जो अधूरी है, परिपूर्ण नहीं है। वास्तविक बात क्या है, रहस्य क्या है?

वास्तविकता यह है कि जीवात्मा अपना प्रारब्ध का भोग भोगते हुए, चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने एवं मोक्ष साम्राज्य की प्राप्ति के लिए आया हुआ एक अकेला पथिक है। हम सभी इस धरती पर प्रपंच संसार की यात्रा के मुसाफिर हैं। निश्चित रूप से, यहाँ सब कुछ छोड़कर एक दिन जाना पड़ेगा। इसमें कोई भी मतमतान्तर, वाद-विवाद या मत-भेद नहीं है। पुरुषार्थ को प्राप्त करने के लिए एक स्त्री शरीर में जीवात्मा है, एक पुरुष शरीर में जीवात्मा है। दो दिव्य जीवात्माओं का मिलन दाम्पत्य जीवन का सूक्ष्म यथार्थ अर्थ है। परिस्थितिवश कभी सुख कभी दुःख का अनुभव किया, कभी हँसे कभी रोये और एक दिन समाप्त हो गये। भगवान् ने हमें यहाँ हाय-हाय करने के लिए नहीं भेजा है। यहाँ पर जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि से आप मुक्त नहीं हो सकते। अवतारी पुरुष को भी यहाँ आने पर रोना पड़ता है। कष्ट, संकट पर ज्यादा ध्यान मत दो। 'तांस्तितिक्षस्व भारत' गीता में भगवान् के कथनानुसार ऐसा करके इसे सहन कर लो।

हे प्यारे ! जिस उद्देश्य के लिए आये हो उसकी प्राप्ति में लग जाओ। साधनामय जीवन बनाओ, भजनीय जीवन बनाओ। प्रारब्ध कर्म आदमी को केवल संकट में डालता है, ऐसी बात नहीं है। शुभ प्रारब्ध है तो उसका जीवन सुखमय होगा। वैश्वात्मक कर्मफल भोग का शासन निष्पक्ष है, भगवान् का जीवात्मा पर इससे बढ़कर क्या वरदान हो सकता है? दो जीवात्माओं का आध्यात्मिक मिलन, आध्यात्मिक साथ है। प्रतिदिन दोनों मिलकर ईश्वर आराधना, प्रभु भक्ति करें। सत्य सनातन वैदिक धर्म का अनुसरण करने वाले को चाहिए, जब वह नया घर बनाये तो नक्शा बनवाते समय सबसे पहले पूजा घर के स्थान एवं रूपरेखा का निर्णय करावे कि यह कहाँ और कैसा बनेगा, उसके बाद भोजन का कक्ष, रसोई-घर, अन्य सब कमरे और स्नान-गृह इत्यादि का देखे।

हमारा सनातन धर्म बहुत ही उदार है। यदि पति शिव भक्त है तो वह शंकर का ध्यान करे, और पत्नी कृष्ण भक्त है तो वह कृष्ण का ध्यान करे। दूसरी बात यह है कि हम दोनों मिलकर आस-पड़ोस और समाज की कितनी ज्यादा से ज्यादा भलाई एवं परोपकार कर सकते हैं। केवल मात्र मानव के लिए ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी, वनस्पति के लिए भी क्या भला कर सकते हैं, इसका भी ध्यान रखें।

गृहस्थाश्रम का तीसरा उद्देश्य कुल परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए सन्तान प्राप्त करना है। आदर्श सन्तान प्राप्ति के लिए सात्त्विक वातावरण, शुद्ध पर्यावरण होना चाहिए। घर में चारों तरफ सन्तों के और भगवान् के चित्र होने चाहिएँ, भगवान् का नाम-संकीर्तन गूँजते रहना चाहिए। कमरे के आकाश के कण-कण में आध्यात्मिक स्पंदन भर कर रखें, इसी वातावरण में शन्तान प्राप्ति हो। माता-पिता की सबसे बड़ी देन यही है जो वो दे सकते हैं।

उनके परस्पर व्यवहार का सन्तान पर बहुत प्रभाव पड़ता है। बच्चे जब २-४ मास के हो जाते हैं, अभी मूक होते हैं, बात नहीं कर सकते किन्तु हर चीज़ को ग्रहण करते हैं। माता पिता के अन्तःकरण में किस प्रकार की स्थिति है, मानसिक अवस्था कैसी है, उसका प्रभाव २४ घण्टे उन पर पड़ता रहता है। माता-पिता का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है कि उनका परस्पर का व्यवहार शान्तिमय, सात्त्विक, एक-दूसरे को सम्मान देते हुए, प्रेम के साथ सामंजस्य बनाये रखने वाला हो। खटपट का व्यवहार होने से सन्तान पर बड़ा भारी आघात पहुँचता है। बच्चे चिड़चिड़े हो जाते हैं और क्रोधी बन जाते हैं, प्रत्येक राष्ट्र में गृहस्थाश्रम कल की प्रजा की सृष्टि करने की बाल-वाड़ी है।

गृहस्थ-आश्रम का चौथा कर्त्तव्य सन्तान के लिए, एक तो यह है कि अपनी सन्तान के प्रथम आचार्य माता-पिता स्वयं हैं ही, विद्यालय जाने के बाद दूसरा आचार्य आता है। अतः माता-पिता बच्चों को आदर्श शिक्षा, अच्छे संस्कार, पवित्र वातावरण देकर समाज एवं राष्ट्र को समर्पित करें। हमारे यहाँ उपनिषद कहते हैं, 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागे नैके अमृतत्वमानशुः' कर्म से, सन्तान से और धन से अमृत तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है, केवल त्याग ही अन्त में हमें वहाँ पहुँचाने वाला है, जहाँ पर पहुँचने के लिए हम यहाँ पर आये हैं। इस लिए कुछ समय जीविकोपार्जन करके व्यवहार निभाये, आखिर तक चाबी पकड़ कर रखना ठीक नहीं है। कहते हैं, 'प्राप्ते षोड्शे वर्षे पुत्रं मित्रवत् आचरेत्'। बच्चों को उत्तरदायित्व देकर गृहस्थाश्रम से मुक्त हो जायें।

उलझन, ममता, आसक्ति को छोड़कर, तन-मन-धन से सेवा करके समाज को लाभान्वित करने का तृतीय आश्रम है-वानप्रस्थाश्रम। वानप्रस्थाश्रम में पति-पत्नी दोनों मिलकर तीर्थ पर्यटन करें, सत्संग में जाकर श्रवण करें, मनन करें, निदिध्यासन करें, घर में रहकर ज्यादा से ज्यादा स्वाध्याय, ईश्वरोपासना, जप, ध्यान आदि करें। जीवन में पूर्ण परिवर्तन आ जाना चाहिए, अब ध्यान प्रपंच के ऊपर न होकर, आध्यात्मिकता एवं आन्तरिक जीवन पर हो।

इसके बाद अब आपको चतुर्थाश्रम संन्यास-आश्रम में प्रवेश करना है, सर्व परित्याग, एक निष्ठा जैसा कि याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद के प्रसंग में बताया गया है। भगवान् के सिवाय अन्य कोई भी विचार मन में नहीं रहना चाहिए। परिपूर्ण रूप में भगवदाकार-वृत्ति, हृदय में भगवान् के लिए प्रेम, मन में भगवद्-चिंतन, बुद्धि में हमेशा भगवद् तत्त्व के बारे में विचार, समस्त कार्य भगवान् की प्राप्ति के लिए किये जायें। समस्त कर्म-बंधन, मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान् को समर्पित कर दें। इस प्रकार आपका हृदय यति, संन्यासी की तरह और जीवन त्यागमय होना चाहिए। यह जीवन का संध्याकाल है, यदि आप प्रारम्भिक आश्रमों में परोपकारी, निष्काम कर्मयोगी रहें हैं तो अनायास ही सहज रूप में त्याग, अनासक्ति, निःस्पृहा, ध्यान, भगवद् चिन्तन की भावना आपके अन्दर आ जाएगी। यह जीवन प्रणाली हमारी भारतीय संस्कृति की अद्भुत विशेषता है, इसको हमें देकर हमारे पूर्वजों ने हमें अनुग्रहीत किया है। इसका यदि हमने लाभ नहीं उठाया तो इससे बढ़कर हमारी भूल क्या होगी?

स्वामी योगानन्द जी ने अपनी, 'सैल्फ रियलाइजेशन फैलोशिप' द्वारा पाश्चात्य समाज के लोगों को समझाने का प्रयास किया है कि योग क्या है? 'योग इज़ दी साइंस ऑफ रिलीज़न ।' अर्थात् योग मजहब का विज्ञान है, उसको अनुभव करने, प्राप्त करने के लिए व्यावहारिक विज्ञान को योग कहा है। स्वामी जी ने अन्त में कहा कि, 'आपका जन्म उत्तम धर्म में हुआ, उत्तम संस्कृति, जीवन प्रणाली आपको विरासत में मिली है। इसका पूरा लाभ उठायें। भगवद् साक्षात्कार एवं ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करके कृत-कृत्य हो जायें, धन्य हो जायें। इसमें प्रमाद बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए।' जैसा कि मैंने कहा, किस दिन वह अन्तिम घड़ी आ जाये, हमें पता नहीं। एक दिन जाना तो निश्चित है, किस समय जाना है, यह पता नहीं। बूढ़ा भी चला जाता है, जवान भी चला जाता है, बीमार आदमी भी मर जाता है, पहलवान तगड़ा आदमी भी चला जाता है। भगवान् ने मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्यत्व देकर भेजा है, महापुरुषों का आश्रय दिया है और मोक्ष प्राप्ति की आकांक्षा भी दी है। तीन बातों से आशीर्वाद देकर हमें अनुग्रहीत किया है। इन तीनों को प्राप्त कर लेने पर उद्यमी होकर अभ्यास में लग जाना चाहिए।

गुरु महाराज कहते थे, डी. आई. एन (डू इट नाऊ, अर्थात् अभी कर लो)। कल जो करना है आज कर लो, आज शाम तक जो करना है, अब कर लो, पता नहीं कब तुम्हारा अन्तिम श्वास चला जायेगा। गुरु नानक जी ने कहा है कि इन्सान आधे श्वास का प्राणी है। इसका क्या अर्थ है? बाहर गया हुआ श्वास, अन्दर आयेगा क्या विश्वास है। अन्दर गया श्वास वहीं पर समाप्त हो गया तो बाहर आयेगा नहीं। तुलसी दास जी एक भजन में कहते हैं-

'नाच रहा है काल शीश पर चेत चेत अभिमानी' अभिमान मत करो, घमण्ड मत करो, तुम्हारे सिर पर काल नाच रहा है। इसलिए हमेशा प्रातःकाल उठते ही याद रखो, 'एक दिन हमें जाना है, ये हमारा अन्तिम दिन हो सकता है। अपने इस जीवन को आदर्श रूप में बना सकूँ, परोपकारमय बना सकूँ, हरि भजन चिंतन करके परिपूर्णता को प्राप्त कर लूँ, इस में देर न करूँ।'

विवेकी होकर, अनासक्त होकर इस प्रपंच के वस्तु-पदार्थों और नाम-रूपों के बीच में अपने लक्ष्य का ध्यान रखें। चार बातों को हमेशा याद रखना चाहिए-पहली बात मृत्यु को हमेशा याद रखो। द्वितीय बात यह संसार दुःखमय है, संसार की वस्तुओं में सच्चा सुख, शान्ति, तृप्ति, सन्तोष कदापि नहीं हो सकते हैं, यह दुःख का सागर है। संसार के वस्तु-पदार्थ से आकर्षित होकर हमें उल्लू नहीं बनना है, मूर्ख नहीं बनना है। अनासक्त होकर अपना कर्त्तव्य करते हुए लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना है। तीसरी चीज है भगवान् को हमेशा याद रखो। उनकी प्राप्ति से हम मृत्यु से परे जाकर अमर बन जाते हैं और समस्त दुःखों को पार करके नित्य सुख की प्राप्ति कर लेते हैं। भगवद् प्राप्ति से सर्व दुःख निवृत्ति और परमानन्द प्राप्ति होती है। वे मृत्यु और दुःख दोनों से परे ले जाते हैं। चौथी चीज है भगवद् प्राप्ति कैसे हो, धार्मिक जीवन कैसे बने, धार्मिक जीवन क्या है? वे बोले-

'श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयोऽपि भिन्नाः
तथा मुनीनां मतयोऽपि भिन्नाः ।
धर्मस्य तत्त्वं निहित गुहायाम्
महाजनो येन गतः स पन्थः ।।'

महापुरुष, सन्त, ज्ञानी, तपस्वी, भक्तों के आदर्श जीवन को पढ़ो, अध्ययन करो और अच्छी तरह से जानो। उनके पदचिह्नों पर हम अपने कदम रखते जायें तो अपने आप वहाँ पहुँच जायेंगे। उनके उपदेशों, उद्बोधनों को हृदयंगम करके सामने रखें तो तुम्हारा जीवन धन्य हो जायेगा। सन्त हमेशा मार्ग दर्शन देते हैं।

हमेशा याद रखने के लिए आप इन्हें लिखकर स्नानघर में शीशे पर लगा दें। इस प्रकार लिख लें-मौत, संसार के दुःख, भगवान् और सन्त। आप रोज दन्त-धावन के लिए स्नान घर में जाते हैं, शीशा देखते ही आपको याद आ जायेगा। इन चार चीजों को याद रखने से आपके अन्दर वैराग्य बना रहेगा और अनासक्ति का भाव रहेगा।

अपने अन्दर के अवगुणों को हटा करके हमेशा दैवी सम्पदा को बनाते रहो। इस कार्य को कभी बन्द नहीं करना, जीवन पर्यन्त करते रहना है। जो अनुचित है उसे निकालो, जो उचित है सहायप्रद है उसे बनाते जाओ। व्यवहार के अन्दर निरन्तर भगवद् चिंतन रखो, एक घड़ी भी भगवान् की विस्मृति नहीं होनी चाहिए। २४ घंटे तो हम ध्यान में, प्रार्थना में, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर में जाकर नहीं बैठ सकते। अन्ततोगत्वा व्यवहार क्षेत्र में कर्त्तव्य कर्म तो करना ही पड़ेगा। खाना-पीना, रोटी, कपड़ा, मकान का सवाल है। २४ घंटे हमें साधना एवं योगाभ्यास के फल को प्राप्त करना है। इसके लिए क्या रहस्य है? जो कुछ भी तुम कर्त्तव्य कर्म करते हो, समझो कि हम ये सब भगवान् के लिए कर रहे हैं। भगवान् सर्वत्र विराजमान हैं। सब काम उनके सामने एवं उनके सान्निध्य में कर रहे हैं। सब कार्यों को उनकी आराधना समझते हुए करते जाओ और उनके चरणों में सौंप दो। तब क्या होगा? अनुचित कार्य आप से कदापि नहीं होंगे। भगवान् के मन्दिर में सड़ा हुआ फल, मुर्झाया हुआ फूल, बासी मिठाई तो नहीं चढ़ायेंगे, ताजा चीज ले जायेंगे। ईश्वरार्पण भाव से किये हुए कार्य परिशुद्ध हो जायेंगे, ये गारन्टी है। सदैव इन तीन चीज़ों का अभ्यास करो और चार चीजों को याद रखो।

आपके शरीर रूपी मन्दिर में अन्त: स्थित अन्तर्यामी भगवान् हैं, उनके चरणों में यह पुष्पाञ्जलि अपर्ण करके समाप्त करता हूँ। मंच पर उपस्थित महापुरुषों की प्रेरणा से जो भी विचार उठा है, उनके आशीर्वाद से उठा है, उनके चरणों में धन्यवाद समपर्ण करके मैं समाप्त कर रहा हूँ।

हरि ॐ तत् सत्।

३.चित्त शुद्धि का महत्त्व

(१८-३-१९८७ भावनगर (गुजरात) में दिया गया प्रवचन)

आनन्दमय दिव्य आत्म स्वरूप, परम पिता परमात्मा की अमर अविनाशी दिव्य संतान !

गुरु महाराज के चरणों का यह दास अपनी सेवा अर्पण करने के लिए आप सब के मध्य उपस्थित हुआ है। उनका सूक्ष्म स्वरूप आपके अन्तस्थ भगवान् अन्तर्यामी प्रभु जिनके कारण आपका शरीर सक्रिय सजीव चलता फिरता मन्दिर है, पत्थर से बना तटस्थ स्थावर मन्दिर नहीं है, लेकिन जंगम सजीव सक्रिय मन्दिर है, उनके चरणारविन्द में 'यद्यत्कर्म करोमितत्तदखिलं शम्भोतवाराधनम्' ऐसे भाव से आराधना के रूप में अर्पण कर रहा हूँ।

यह शरीर भगवान् का मन्दिर है, इसमें भगवान् विराजमान हैं। हमेशा इसी होश में, इसी जागृति में रहने से ही हम इसको पवित्र रखेंगे। काया वाचा मनसा उनके योग्य ही हमारी चेष्टा होगी। मन के विचार, हृदय की

भावना और वाणी उनके लायक पवित्रतम होगी। यदि इसकी विस्मृति हो जाती है तो कई प्रकार की अनुचित चेष्टाएँ चालू हो जाती हैं। इसी के लिए एक मार्मिक बात श्वेताश्वतर उपनिषद् में बतायी गयी है-

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।। ६/११ ।।

इस प्रकार साक्षी चैतन्य के रूप में, हमारे मन-बुद्धि के अन्दर जो गुण-दोष, सत्त्व-रज-तम, आसुरी सम्पदा दैवी सम्पदा है, उसे बाधित नहीं करता है। अपनी निर्गुण अवस्था में ही रहता है, निर्लिप्त है, निर्बाधित है। प्रकृति के गुण उसे स्पर्श नहीं कर सकते। इस सत्य को हमेशा अपने हृदय में रखकर आचरण करें। अनायासेन सहजरूपेण ही आपका चरित्र उत्तम, निर्मल एवं यशस्वी होगा, सदाचारी दिव्य जीवन होगा। अन्तस्थ भगवान् के प्रति सद्भावना, आदर, सत्कार होगा, भय भी रहेगा। जब हम बहुत बड़े बुजुर्ग व्यक्ति के सामने बैठते हैं तो अनुचित कार्य नहीं कर सकते। कक्षा में बन्दर जैसी चंचलता वाला लड़का हो, अध्यापक के आते ही चुपचाप बैठ जाता है। बन्दर जैसी चंचलता को समेट कर रख लेता है। जैसे ही अध्यापक बाहर गया, उसके अन्दर दस बन्दर प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्तस्थ भगवान् की निरन्तर और चिरस्थायी उपस्थिति के प्रति हमेशा सचेत रहना चाहिए। 'वो मेरे सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त हैं। मैं कहीं भी जाऊँ, मेरे साथ-साथ हैं। वो मेरे कण-कण में देदीप्यमान हैं।' यह भावना सदैव बनाए रखनी चाहिए। क्योंकि हम उनके सानिध्य में हैं अतः सदैव उचित कार्य ही करने हैं। अनुचित कार्य होने से व्यभिचार हो जाता है। 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा' वाली मार्मिक बात हमेशा याद रखनी चाहिए। अर्थात् वह एक निर्गुण चैतन्य के रूप में प्राणी मात्र के अन्दर, सब नाम-रूपों के अन्दर गूढ़ रूप से बसा हुआ है। उसको मन में रखकर दिव्य दृष्टि से, सूक्ष्म दृष्टि से देखकर, उन्हीं का सुमिरन रखते हुए इस विराट क्षेत्र में कार्य करना है। और सर्वत्र विराजमान तत्त्व के साथ सम्बंध जोड़ कर रखना है, जिससे आध्यात्मिक मार्ग में, योग मार्ग में कठिनाइयाँ नहीं आवें।

भगवान् ने हमारे अन्दर सभी प्रकार की क्षमताएँ भर रखी हैं, कोई कमी नहीं है। यदि चाहें तो अभी इसी क्षण भगवान् जैसे परिपूर्ण बन सकते हैं। शास्त्र पुराण कहते हैं, देवलोक के देवता भी पृथ्वीलोक में आकर मानव बनना चाहते हैं। जीवात्मा मनुष्य-लोक में ही कैवल्य मोक्ष साम्राज्य के अवर्णनीय आनन्द को प्राप्त करके धन्य बन सकता है। जिस महान पुण्य कार्य के फलस्वरूप उन्हें देव-लोक मिला है, भोग भोगने से वह पुण्य प्रभाव जब समाप्त हो जाता है तो पुनः इसी लोक में आना पड़ता है। अन्ततोगत्वा मोक्ष की सम्भावना केवल मात्र मानव-लोक में ही है। इस पर विश्वास रखें तो आपका सौभाग्य कितना है, आप स्वयं जान सकते हैं।

इस यातनापूर्ण शरीर में सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि, राग-द्वेष, क्लेश-कलह और संकट हैं। लेकिन एक महान गुण भी है, वो क्या है? इस मानव-लोक में मनुष्यत्व मोक्ष का द्वार है। जन्म-मृत्यु से पार जाने का राजमार्ग है, राजद्वार है। इसमें जो अन्य कमी कमजोरी अवगुण-दोष आदि हैं, उस दुर्भाग्य की ओर ध्यान नहीं देकर, उसको सहन कर लेना चाहिए। अत्यन्त दुर्लभ प्राप्य मानव-लोक के सौभाग्य की ओर ध्यान देते हुए पूर्ण लाभ उठाने की कोशिश करनी चाहिए।

गुरु महाराज बोलते थे-'डी.आई.एन. (डू इट नाउ)' अर्थात् अभी करो, किन्तु यह कोई नयी बात नहीं है। कबीर दास जी कहते थे-

'जो कल करना, सो अज करले,
जो अज करना, सो अब करले।

जब चिड़ियन खेती चुग डाली
फिर पछताये क्या होवत है।।'

पल-पल में आयु क्षीण हो रही है। जो कल करना है उसे आज कर लो, जो आज करना है उसे अभी सायं काल तक कर लो। जब चिड़ियों ने खेती चुग डाली तो पश्चात्ताप करने का क्या प्रयोजन है?

'जब पाप की गठरी शीश धरी,
तब शीश पकड़ कर क्यों रोवत है।'

अभी जागो, उठो, और काम में लग जाओ, आगे चलो, उद्यमी बनो। माया की एक बड़ी विचित्र शक्ति है। उसका एक ही काम है, जो करना है उसकी विस्मृति करा देना। कल करेंगे, फिर कर लेंगे, यह माया की चाल है। इसको पकड़ करके गिरफ्तार नहीं कर सकते। इससे मुक्त होने की कोई सम्भावना है? नहीं है। लेकिन इसके लिए हमें एक सूत्र बताया गया है- 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का, उसके सुख और दुःख का एक ही कारण है-मनुष्य का मन। भगवान् ने आपको शरीर दिया है, वो जड़ है, उसमें कोई चेतना नहीं है जो आपको बाधा दे सके। सारी बाधाएँ निश्चित रूप से अन्तःकरण के अन्दर से आती हैं। मन की स्थिति को ठीक करने की कोशिश हमेशा करते रहें, इसी में हमारी सफलता की चाबी है। बद्ध होकर रहते-रहते फिर हमें यहाँ आना है, या मुक्त होकर यहाँ से निहाल होकर आनन्द, शान्ति और पूर्णता के अनुभव में सदा के लिए स्थापित हो जाना है? जैसी मन की परिस्थिति है वैसा ही आपका जीवन होगा। पहले विचार, फिर वाणी, इसके बाद क्रिया और परिणाम। जिस प्रकार का विचार आपके अन्दर होगा वैसा ही आचरण, व्यवहार, चरित्र होगा। यदि सात्त्विक विचार होगा तो उत्तम चरित्र, पवित्र आचरण और सद्यवहार होगा। यदि राजसिक विचार होगा तो राग-द्वेष, कलह-क्लेश के साथ आपका कार्य होगा। आचरण भी उथल-पुथल, अशान्त-विक्षिप्त होगा एवं व्यवहार भी संघर्षात्मक होगा। यदि आपके विचार तमोगुणी हैं तो आपका आचरण क्रोध, द्वेष, आलस्य और स्थूलता से भरा हुआ होगा।

पहने हुए कपड़ों पर यदि कीचड़ लग जाती है तो वह हमें दिखती है। घर जाकर गर्म पानी सर्फ-साबुन से उसे धोकर साफ कर लेते हैं। लेकिन चित्त की शुद्धि कैसे हो? चित्त क्या है, हम जानते नहीं हैं। चित्त कोई वस्तु नहीं है जिसको पकड़ कर हम साफ कर लें, धोबी को दे देवें। चित्त आन्तरिक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अव्यक्त है, यह दृष्टिगोचर नहीं है। यदि साफ करने का तरीका मालूम भी पड़ जाये तो हमारे पास समय नहीं है। बाकी सब कार्य करने के लिए समय है। हमारा चित्त कैसा है, क्या विचार उठता है, उसके अन्दर कैसी वृत्तियाँ उठती हैं, उसकी कैसी चेष्टा रहती है? इस ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हमारे लिए सबसे प्रमुख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यक कार्य है कि हम अपना अध्ययन करें, आत्मनिरीक्षण करें। इसके लिए यदि हम समय नहीं देते तो इससे बढ़कर कोई मूर्खता, अज्ञान, और भारी त्रुटि नहीं हो सकती। अपने आप को पहचानने की दिन प्रति दिन कोशिश करनी चाहिए। हमारे पास सुबह-सुबह की चाय, नाश्ता, दिन का भोजन, रात्रि का भोजन और बीच-बीच में चटपटी चाय लेने का समय है। वह भी केवलमात्र मर मिटने वाले हड्डी-मांस के पिंजरे की सेवा करने के लिए। रसनेन्द्रिय की तृप्ति के लिए होटलों में खर्चा करके फालतू समय बर्बाद कर आते हैं। जन्म साफल्य और जन्म बर्बादी का निर्णय करने के लिए आत्मनिरीक्षण का समय नहीं है। हमारे विनाश के लिए यह हमारी विपरीत बुद्धि है।

भारतवर्ष में हमारा जन्म हुआ है। हमारे देश के ऋषि-मुनियों, योगियों ने इन्सान की दिव्यता को, अनुभव के आधार पर जान लिया और 'श्रृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः' सम्बोधित करते हुए आह्वान किया, 'सुनो, सुनो! तुम सब अमृत के पुत्र हो, तुम्हारे लिए मृत्यु नहीं है!' वैदिक काल में ही दिव्य अमर आत्म तत्त्व को जानकर हमारे सच्चे निज स्वरूप को उन्होंने पहचान लिया। इसे पहचान कर हमें भी धन्य हो जाना चाहिए। सत्य को घोषित करने वाला राष्ट्र-भारतवर्ष ही हमारी मातृभूमि है। प्रत्येक भारतीय में आध्यात्मिकता है क्योंकि हमने यहाँ के अन्न-जल

को सेवन किया है। लेकिन इसको जाग्रत करने की जरूरत है। हर युग में, हर पीढ़ी में महापुरुष आकर हमें जाग्रत करते हैं।

'हे मानव, तुम अमर आत्मा हो ! भगवान् ने हमको यह मनुष्य जीवन, एक अमूल्य पुरस्कार एवं सुनहरी अवसर के रूप में दिया है। ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता, इसका परम सदुपयोग करके अभी-अभी इसी जन्म में अपनी दिव्यता को पहचानकर आनन्द के भागी बनो! इसमें देरी मत करो! पता नहीं मृत्यु कब आ जाए, साधना में लग जाओ!'

इसी शताब्दी में सद्‌गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी भारतवर्ष एवं तमाम दुनिया को स्व-अनुभव के आधार पर जागृति देने आये। उनकी अनोखी विचित्रता यह है कि केवल जागृति देकर हमें छोड़ नहीं दिया। शुरू से लेकर आखिर तक, कदम-कदम पर किस तरह साधना करनी चाहिए? क्या-क्या और कैसे अभ्यास करना चाहिए? भक्ति योग, कर्म योग, ज्ञान योग, राज योग की क्या-क्या साधनाएँ हैं? उपनिषद, वेदान्त, हठ योग, कुण्डलिनी, जप योग, संकीर्तन आदि की क्या-क्या साधनाएँ हैं? आध्यात्मिक साधना एवं भगवत् साक्षात्कार में ऐसी कोई भी बात नहीं रह गई है जिसका उन्होंने विस्तृत विवरण न किया हो।

जितने भी हमारे धर्म ग्रन्थ गीता, भागवत, रामायण, उपनिषद, योगवासिष्ठ, वेदान्त, वैष्णव ग्रन्थ, शाक्त ग्रन्थों आदि में जो-जो साधना के बारे में बताया है, उन सभी का संकलन 'साधना' नामक पुस्तक में करके उन्होंने हमें अनुदान के रूप में दिया है। प्रत्येक व्यक्ति की रुचि वैचित्र्य को ध्यान में रखते हुए साधना के बारे में बता कर महान् अनुकम्पा की है। उनके रचित साहित्य का यदि दशांश, दशांश क्या, यदि शतांश भी अध्ययन कर लिया तो निहाल हो जायेंगे, जन्म सफल कर लेंगे।

चित्त शुद्ध है, अशुद्ध है, इसमें कैसी वृत्ति, परिस्थिति और अवस्थाएँ हैं, इसके बारे में जानते नहीं हैं। जैसे शरीर-संरचना वाले, शरीर-विज्ञान वाले, पूरे शरीर को चीर-फाड़ कर के अंग-प्रत्यंग के बारे में, आन्तरिक कोष के बारे में, कि क्या क्या अवयव हैं, कैसे काम करते हैं, सुरक्षा के लिए हमें क्या-क्या करना चाहिए आदि-सब समझाया है, इसी प्रकार गुरु महाराज ने घंटों-घंटों तपस्या, ध्यान और योगाभ्यास द्वारा अन्तर्मुखी होकर मन, अन्तःकरण का अध्ययन किया। आत्म निरीक्षण, आत्म परीक्षण करने के बाद एक विचित्र पुस्तक 'मन-रहस्य और निग्रह' हमें दी। इसको पढ़ने से हमको ज्ञान हो जाता है। लेकिन एक बात है, घड़ी चल रही है या नहीं चल रही है, कैसे जानें? टिक टिक टिक सेकिंड की सुई की आवाज आ रही है तो घड़ी चल रही है, यदि यह आवाज रुक गयी तो पता चल जाता है कि घड़ी चलनी बन्द हो गयी है। स्थूल चिह्नों से हम सूक्ष्म बात को जान लेते हैं, अनुमान लगा सकते हैं। इसी तरह से 'जैसी मति वैसी गति।' गति माने प्रवृत्ति, अपने कार्यों का अध्ययन करें। अपने आप मालूम पड़ जायेगा कि हमारे मन की स्थिति क्या है? छोटी-छोटी बातों से हमें क्रोध आ गया, चिल्लाकर गाली दे देते हैं, अंट-शंट बोलकर अपमान कर देते हैं तो इसका मतलब मन में गड़बड़ी है। हमारे मन में तमोगुणी आसुरी सम्पदा का साम्राज्य है। रोजाना १०-१५ मिनट शान्त अवस्था में बैठकर अपना अध्ययन करना चाहिए कि सुबह से शाम तक हमारा व्यवहार कैसा रहा, मुख से कैसे शब्द निकले, बात करते समय मुख की मुद्रा कैसी रही, आचरण कैसा रहा क्योंकि जो अन्दर है, वही बाहर निकलता है।

हमारा अन्तःकरण चार स्वरूप धारण करता है, नम्बर एक-जो हमको अशान्त बनाने वाला है, अन्धाधुंध वृत्ति-प्रवाह वाला है, संकल्प- विकल्प करता है, यह 'मन' है। दूसरा - इस वृत्ति-प्रवाह का जहाँ मूल है, जहाँ उत्पत्ति स्थान है, वह 'चित्त' है, यह स्मृति शक्ति है। इसमें जन्म-जन्मान्तर के जितने भी अनुभव हैं, उनके बीज रूप में सूक्ष्म निशान हैं, जिन्हें संस्कार कहते हैं। एक ही प्रकार के अनुभव बार-बार होने से उस अनुभव के प्रति हमारे अन्दर एक प्रवृत्ति बन जाती है जिसे वासना कहते हैं। वासना और संस्कार जिस भूमिका में रहते हैं, उसे 'चित्त' बोलते हैं। तीसरा है अहंकार। मैं, मैं, मैं, मैं हूँ इसको 'अहंकार' कहते हैं। विवेक करने वाली, विचार करने वाली,

समझने की कोशिश करने वाली, दो चीजों का अन्तर जानने वाली जो है, उसको 'बुद्धि' कहते हैं। बुद्धि सबसे श्रेष्ठ और उत्कृष्ट भाग है। मन में वृत्तियाँ, बुद्धि में विवेक, विचार, विश्लेषण अनुसंधान, और चित्त में स्मृति-इन तीनों के द्वारा कार्य करने वाले आप हैं। देहाध्यास के कारण चेतन और जड़ में सम्बंध दिखाई देता है जो अज्ञान-जनित और अविद्या-आश्रित मानव व्यक्तित्व का 'अहं' है। सब कलह-क्लेश, झगड़ा-फसाद, स्वार्थ इसी में है।

किसी ने कुछ गलत कह दिया तो हम समझते हैं इसने हमारा अपमान कर दिया। उस बिचारे के अन्दर हमारा अपमान करने का भाव रहा भी नहीं होगा, सहज में ही कुछ बोल दिया होगा। लेकिन उसका गलत अर्थ लगाकर अपना अपमान समझ लिया और अकारण ही उससे दुश्मनी कर ली। व्यक्ति को जितना अहंकार सताने वाला है, उतना सताने वाला दूसरा कोई नहीं है। इसके कारण बड़ी से बड़ी हिंसा तक करता है। किन्तु इस अहंकार को ही अपना परम मित्र मान कर बैठा है, ऐसी हमारी अवस्था है। अहंकार के बारे में किसी ने कुछ कह दिया तो लड़ाई करने के लिए तैयार हो जाते हैं। जो हमारे लिए अभिशाप है, महान् रोग है, हिंसा करने वाला है, उसी को सब कुछ मानकर, उसे पोषित करके रखने की कोशिश करते हैं।

अहंकार को समझकर शुद्धिकरण करना चाहिए, सात्त्विक एवं पवित्र करना चाहिए। मैं कौन हूँ? मैं फलाना हूँ, मैं ऐसा हूँ, ऐसा नहीं कहना चाहिए। मैं कौन हूँ? मैं भगवान् के चरणों के दास के दास, दास के दास, दास के दास का दासानुदास हूँ। यह शुद्ध अहंकार है, इससे आपका भला हो सकता है। इसी प्रकार मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार का आत्मविश्लेषण करके अन्तःकरण में पवित्रता ले आनी चाहिए।

चित्तशुद्धि के बिना, भगवत् साक्षात्कार के लिए योग मार्ग में एवं आध्यात्मिक मार्ग में अभी हमने प्रवेश ही नहीं किया है, दरवाजे के बाहर ही हम खड़े हैं, ऐसा समझें। परिशुद्ध चित्त के बाद ही आध्यात्मिक जीवन शुरू होता हैं, नहीं तो केवल तथाकथित साधना है। जैसे जल के ऊपर लकड़ी से रेखा खींचना, कितनी स्थायी रहेगी? वैसी ही हमारी साधना रहेगी।

सन्त मुरारी बापू जी की एक कविता है जिसका अर्थ बड़ा सरस है, 'तुम पूजा-पाठ करो, जल चढ़ाओ, आसन लगाकर जप-ध्यान करो, यदि आपके अन्दर से अहंकार-क्रोध आदि नहीं गया तो तुम्हारी साधना व्यर्थ है। चारों धाम तीर्थ करके आओ, दान-पुण्य, गौ-दान करो, यदि तुम्हारे अन्दर छल-कपट, झूठ-फरेब आदि है तो सब तीर्थ-पर्यटन व्यर्थ हैं।' इसको पढ़कर मनन करना चाहिए। इसका हमने हिन्दी एवं अंग्रेजी में अनुवाद करके छपवा दिया है। श्री शंकराचार्य जी ने भी लिखा है-यदि तुम्हारे पास धन सम्पत्ति, यश, विद्या सब कुछ हो लेकिन मन इन्द्रियों में-

गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्। (गुर्वष्टकम्)

आध्यात्मिक जीवन में इन तमाम साधनाओं का क्या स्थान रहता है ? जैसे इमारत के लिए नींव स्थान रखती है। यदि नींव ठीक अर्थात् सुदृढ़ है तो पाँच मंजिल, दस मंजिल, बीस मंजिल भी इमारत खड़ी कर सकते हैं। बुनियाद ठीक नहीं तो इमारत खड़ी नहीं कर सकते। इसी तरह आध्यात्मिक जीवन के लिए मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को परिशुद्ध करना ही नींव को सुदृढ़ करना है। सत्संग, आध्यात्मिक सभाओं में बैठकर, उपदेश श्रवण करके, समझ करके, अपने अन्तःकरण को निर्मल करो।

दूसरा तरीका है स्वाध्याय। साधना के लिए स्वाध्याय को प्रमुख स्थान दिया गया है। पतंजलि योग दर्शन में भी इसको अधिक महत्त्व दिया है। बेद, उपनिषद् और अन्य सद्ग्रंथों को पढ़ना चाहिए। श्री शंकराचार्य जी भी कहते है, स्वाध्याय को एक दिन भी नहीं छोड़ना चाहिए, प्रमाद नहीं करना चाहिए। इससे अन्तःकरण के विषय में, सत्त्व,

रज, तम के विषय में जानकारी होती है। सात्त्विक, पवित्र और निर्मल चित्त के क्या लक्षण हैं, उसको कैसे प्राप्त करें, इस सब का ज्ञान होता है।

तीसरा उपाय है, विशेष करके संतों के चरित्र को खूब पढ़ना। उन्होंने अपने आदर्श जीवन के द्वारा भगवत् प्राप्ति का मार्ग दिखाया है। वे अपने आचरण एवं व्यवहार से हमारे सामने एक रूपरेखा बनाकर रख देते हैं। उस रूपरेखा का अनुसरण करने से आप स्वयं ही अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते जाते हैं।

चौथा ज्ञान प्राप्त करने का सुलभ उपाय क्या है? भगवान् ने तुम्हें आँख, कान, बुद्धि दी है, चारों ओर देखो, देखकर के पहचानो। जीवन में क्या चेष्टा करने से कैसी दशा प्राप्त होती है, इस पर ध्यान दो। शराब, सिगरेट, व्यभिचार के लिए सब मना करते हैं। कैंसर, लिवर खराब, क्षय रोग, गुर्दे खराब, हृदय रोग आदि हो जाते हैं। ऐसे दुर्व्यसनों में जाने के बाद व्यक्ति रोग ग्रस्त होकर खटिया में पड़कर, हाय-हाय करके हजारों रुपये खर्च करके, यातना भोगते-भोगते मर जाता है। ऐसा देखकर के भी चार पैकेट सिगरेट के लेकर पीने लग जायें तो हमारे जैसा मूर्ख और उल्लू कौन होगा। स्वयं कटु अनुभव प्राप्त करके इसके बाद आँख खोलना बुद्धिमत्ता नहीं है। दूसरों के अनुभव से सबक सीख लेना चाहिए, अपने आपको सचेत, जाग्रत कर लेना चाहिए। हम अपने बारे में, अन्तःकरण के बारे में अपने आप नहीं समझ पाते हैं। इसलिए सत्संग, श्रवण, स्वाध्याय, सन्तों के आदर्श जीवन से हम सीख सकते हैं।

हरि ॐ तत् सत्।

४.दिव्य जीवन के मूल सिद्धान्त

(कटक साधना शिविर में २ जनवरी १९८८ को दिया गया प्रवचन)

आज का विषय है दिव्य जीवन कैसे जीना चाहिए। आप दिव्य जीवन संघ के सदस्य हैं। दिव्य जीवन संघ के संस्थापक, हमारे परम प्रिय पूजनीय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के आप भक्त हैं। उनके योग-वेदान्त सम्बन्धी ज्ञान को तथा धार्मिक और नैतिक शिक्षण को अपने जीवन में उतार कर, उसके अनुसार जीवन बनाने के लिए कोशिश करने वाले, आप एक विशेष वर्ग के व्यक्ति हैं। दिव्य जीवन ही आपका सिद्धान्त है। सदस्य होने के कारण दिव्य जीवन को आदर्श बनाकर, आपने उसके मूल सिद्धान्तों को अपने अन्दर प्रकटित करते हुए जीवन जीना है।

जिन लोगों का दिव्य जीवन संघ के बारे में परिचय नहीं है, उनके लिए यह नया विषय है। उनके लिए विचार प्रकट करने का दूसरा तरीका होगा। आप सब तो इन सिद्धान्तों से भली-भाँति परिचित हैं। इसलिए इस सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ। आप दिव्य जीवन बनाने के विषय में जानना चाहते हैं। दिव्य जीवन बनाना आपका प्रथम महत्त्वपूर्ण मौलिक कर्तव्य है, आपका उत्तरदायित्व है। दिव्य जीवन संघ का एक छपा हुआ प्रतिज्ञापत्र है, उस पर हस्ताक्षर करके भर कर भेजना होता है। छपे हुए कागज़ पर क्या प्रतिज्ञा करते हैं? तीन विषयों पर प्रतिज्ञा करनी होती है। जब तक प्रतिज्ञा नहीं करते, तब तक कोई भी व्यक्ति दिव्य जीवन संघ का सदस्य नहीं बन सकता। प्रश्न आता है कि वह प्रतिज्ञाएँ क्या हैं? उनमें कोई भी जाति-धर्म, सम्प्रदाय की बात नहीं है, अनपढ़ या डिग्री प्राप्त किये होने की भी बात नहीं है। दिव्य जीवन संघ के सिद्धान्त एवं शिक्षण तमाम दुनिया के लिए विश्वात्मक भाव से बने हैं। इसमें सम्प्रदायवाद नहीं है। किसी भी देश का नागरिक-चाहे इंग्लैंड, अमरीका, रूस, चीन, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया का हो, या भारत के केरल, उड़ीसा अथवा अन्य किसी भी प्रान्त का हो, स्त्री-पुरुष, बालक या वृद्ध हो-सदस्य बन सकता है। वह प्रतिज्ञाएँ क्या हैं?

प्रथम-मैं प्रमाणिक प्रतिज्ञा लेता हूँ कि मैं अपने जीवन में सत्यव्रती बनूँगा। सत्यव्रती बन कर सत्य का पालन करूँगा, सत्य का पुजारी बनूँगा। द्वितीय-मैं काया, वाचा, मनसा अपना आचरण पवित्र रखूँगा। संयमी बन कर उस रास्ते को पकडूंगा, जिसमें ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती हो, अर्थात् ब्रह्मचर्य, परिशुद्ध चरित्र का पालन करूँगा। तृतीय-मैं अपने जीवन में अन्य किसी प्राणी मात्र को दुःख नहीं दूँगा, किसी को हानि नहीं पहुँचाऊँगा। बल्कि विश्वप्रेम की भावना से दया और क्षमा को अपना कर सबको सुख-शान्ति देने का प्रयास करूँगा। मेरा व्यवहार अहिंसापूर्ण रहेगा। इस प्रकार सत्यव्रत, पवित्र सदाचारण, दयामय, अहिंसात्मक व्यवहार, इन तीन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की प्रतिज्ञा लेने पर सदस्य बनने का अधिकारी बनता है।

१३ जनवरी १९३६ में पवित्र जाह्नवी भागीरथी के किनारे ऋषिकेश क्षेत्र के पास दिव्य जीवन संघ की स्थापना गुरुदेव ने की थी। १९८६ में इसकी स्वर्ण जयन्ती मनायी गयी। इस संस्था का दृष्टिकोण विशाल है। ये तीनों तत्त्व स्वयं आपके व्यक्तिगत चरित्र में, अपने कुटुम्ब-परिवार, गृह, अड़ोस-पड़ोस और विभिन्न समुदायों के साथ

दैनिक व्यवहार में और उद्योग-व्यापार, कृषि, सर्विस आदि में प्रकट होने चाहिएँ। सत्य परायणता, सदाचार का आदर्श मैत्री, करुणा, प्रेम और अहिंसात्मक व्यवहार होना दिव्य जीवन संघ के सदस्य का मौलिक कर्तव्य है। यह आपका कर्तव्य है, जिम्मेवारी है, और मैं क्या कहूँ। यह आपका परम सौभाग्य है, इससे आपका जीवन उत्कृष्ट बनेगा। परिवार के लिए आप आदर्श सदस्य बनेंगे। माता-पिता के लिए आप सुपुत्र और सुपुत्री बनेंगे। अपने बच्चों के लिए आदर्श माता-पिता बनेंगे। दाम्पत्य जीवन सुखमय बनेगा। सदाचारी दिव्य जीवन बनाने वाला साधक भगवद् भक्त, धर्म-प्रेमी पति, अपनी पत्नी के लिए आदर्श पति होगा, उसको सुख-स्मृद्धि देगा। ऐसी साधिका, अपने पति के लिए आदर्श पत्नी होगी, पतिव्रता, शील स्वभाव और सेवा भाव वाली होगी, अहंकार रखकर पति को परेशान नहीं करेगी। मोहल्ले में अच्छे पड़ोसी बनेंगे। तीनों प्रण लेने से आदर्श दाम्पत्य-गृहस्थ-आश्रम बन सकता है।

भारतवर्ष में आजकल सामाजिक संघर्ष, विभिन्न प्रकार की विषमता, सामंजस्य का हास, अन्तर्द्वन्द्व, क्लेश, द्वेष, हिंसात्मक प्रवृत्ति, भयभीत वातावरण, जीवन की अनिश्चितता फैली हुई है। इस वातावरण में दिव्य जीवन संघ की इन प्रतिज्ञाओं से आदर्श जीवन को स्वीकार कर विषम परिस्थितियों में अपना जीवन सार्थक बनाएँ। आपकी जीवनधारा से समाज की जीवनधारा शुद्ध होगी, परिशुद्ध होगी। जहाँ अशान्ति है वहाँ शाँन्ति आ जायेगी। विविध वर्गों के बीच में जहाँ पर राग-द्वेष, कलह-घृणा और संघर्षात्मक सम्बन्ध हैं, वहाँ पर प्रेम और भाईचारा, एकता और सहनशीलता आ जायेगी। जहाँ पर भ्रष्टाचार है, चार सौ बीसी है, चोर बाजारी है, वहाँ पर भी आदमी सत्यव्रत के प्रण द्वारा सारी विघ्न-बाधाओं और मुश्किलों पर विजय पा लेगा। जब वह राजा हरिश्चन्द्र जैसे दृढ़ निश्चयात्मक भाव से धीर होकर के सत्यव्रत पर बिल्कुल अटल रहेगा, अपने प्रण से हटेगा नहीं, तभी उसके आदर्श जीवन का प्रभाव समाज को शुद्ध करेगा। भ्रष्टाचार का सामना करके उसे हटायेगा। पूरा का पूरा नहीं हटा सका तो उसे कम अवश्य करेगा।

ऐसी परिस्थितियों में बहुत परेशानियों को सहना पड़ेगा। आप एक विभाग में काम करते हैं। दिव्य जीवन संघ के सदस्य होने के नाते आप सत्यव्रती हैं। ईमानदारी से अपना कर्तव्य करते हैं। लेकिन आपके वरिष्ठ अधिकारी दिव्य जीवन संघ के सदस्य नहीं हैं, उनके अन्दर कुछ असत्यवाद का सिद्धान्त है। तब क्या होगा? वह आपकी प्रशंसा नहीं करेगा। वह कहेगा, 'हमारे बीच में कहाँ से हरिश्चन्द्र आ गया है? इसको हटाओ, इसका स्थानान्तरण कर दो, कुछ न कुछ आरोप लगाकर, शिकायत करके भेजो।' ऐसा करके वहाँ से हटा देते हैं। दिव्य जीवन संघ के सदस्य ऐसी परिस्थितियों को मेरे सामने रखते हैं। मेरा कहना है कि दिव्य जीवन, आदर्श जीवन जीने के लिए तकलीफों को सहन करना पड़ेगा। इस कसौटी से मालूम पड़ेगा कि हमारे अन्दर आदर्श के प्रति कितना प्रेम है, कितनी लगन है। यदि हमने आदर्शवाद को छोड़ दिया तो भला हमारी क्या कीमत रह जायेगी? यदि विपरीत हवा से यह आदर्श डगमगा जाता है तो ऐसा आदर्शवाद तथाकथित है, नाम मात्र का है, यथार्थवाद आदर्श नहीं है।

दिव्य जीवन संघ के ये तीन तत्त्व उन्नत दैवी सम्पदा हैं, सगुण हैं, हमारे धर्म की आधारशिला हैं। भारतीय सत्य सनातन वैदिक धर्म को हमने ज्योतिस्वरूप, उज्ज्वल, पूर्ण रूप से प्राप्त किया है। वही हमारी ज्वलन्त संस्कृति है। हमारा श्वास-प्राण है-सत्य परायणता, पवित्र एवं सदाचारपूर्ण चरित्र से चरित्रवान होकर जीना। हमारे जीवन से किसी को भी हानि-नुकसान न हो, यही अहिंसात्मक जीवन है। हमारा जीवन सर्व लोक कल्याण के लिए होना चाहिए-सबके हित के लिए, सबके सुख के लिए। ये तत्त्व भारतीय संस्कृति के श्वास-प्राण हैं।

संस्कृत में एक कहावत है, 'यदि मोक्षमिच्छसि चेत् तात विषयान् विषवत् त्यज'-हे प्यारे, यदि मोक्ष को चाहते हो तो विषय-विलास का त्याग करो, विषयों को विष के समान समझकर त्याग दो। यह तुम्हारे लिए हानिकारक है। 'ब्रह्मचर्य अहिंसाव्रत सत्यं पीयूषवत् भज'-संयम- सदाचार, सत्य-अहिंसा को अमृततुल्य समझकर अपने जीवन में स्वीकार करो और सक्रिय रूप से आचरण में उतारो। हमारे पूर्वजों का भी यही कथन है। पीयूष

माने अमृत अर्थात् अमृत तुल्य अपना जीवन बनाना। दिव्य जीवन जीने का अर्थ है, भारतीय संस्कृति को हमारे जीवन में सक्रिय और सजीव बनाना, प्रगतिशील बनाना ताकि भारतीय संस्कृति के हम जीवन्त प्रतीक बनें। हमने अपने परम प्रिय सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी के सामने प्रमाणिक प्रतिज्ञा की है तो - भगवान् श्री रामचन्द्र जी के जैसे, एक बार वचन दे दिया तो वचनबद्ध हो कर उस पर अटल अडिग रहना है, अपने जीवन के समस्त कार्यक्षेत्र में, छोटे-बड़े कार्यों में इन तीन तत्त्वों को सुरक्षित रखना है, सक्रिय बनाना है। सजगता दिव्य जीवन बनाने की गारन्टी है।

दिव्य जीवन बनाने के लिए स्वार्थ का त्याग करना पड़ेगा। इन तीन तत्त्वों के बाद दिव्य जीवन संघ की चौथी साधना है-नि:स्वार्थ सेवा अथवा निष्काम परोपकार। दिव्य जीवन संघ के प्रतीक में, चिह्न में, चार सिद्धान्त-शब्द हैं-सेवा, भक्ति, ध्यान और आत्मसाक्षात्कार। हमारे जीवन में इन चारों को सक्रिय रूप में उपस्थित होना पड़ेगा, इनका सक्रिय रूप में अभ्यास करना पड़ेगा, तभी सचमुच में हमारा जीवन दिव्य जीवन बनेगा। दिव्य जीवन बनाने वाले व्यक्ति के जीवन में स्वार्थ का स्थान नहीं है। गुरुदेव कहते हैं कि इसको अच्छी तरह से समझो, अच्छी तरह से ग्रहण करो। वास्तविक रूप में प्रथम मुख्यता भगवान् के लिए ही है। जहाँ स्वार्थ का स्थान है तो वह दिव्य जीवन नहीं है।

प्रेम का स्वरूप क्या है? यह है, भगवान् के प्रति प्रेम और प्राणी मात्र के प्रति प्रेम। विश्व प्रेम व्यावहारिक क्षेत्र में बाहर तथा प्रभु प्रेम आन्तरिक जीवन में सूक्ष्म भूमिका के अन्दर। दोनों प्रकार का प्रेम द्वितीय साधना है। दिव्य जीवन बनाने के इच्छुक व्यक्ति के अन्दर भगवद् प्रेम, निरन्तर भगवान् की याद, प्रेम पूर्वक दैनिक उपासना, भजन-पूजा, आराधना होनी चाहिए। इसके साथ ही सबसे द्वेष छोड़कर, नकारात्मक सम्बन्ध को छोड़कर, घृणा आदि को छोड़कर, सबके साथ प्रेम का सम्बन्ध रखना, दिव्य जीवन बनाने का दूसरा अभ्यास है। इसको सक्रिय रखने से जीवन दिव्य हो सकता है। इसके अभाव में पूर्ण रूप से दिव्य जीवन नहीं हो सकता, अधूरा रह जायेगा, अपूर्ण रह जायेगा।

दिव्य जीवन बनाने के लिए ५-१० मिनट के लिए बिल्कुल शान्त हो कर ध्यान करो। जगत को भूल जाओ, प्रपंच को भूल जाओ। समस्त वस्तु पदार्थ को भूल करके, 'केवल मात्र भगवान् एकमेव हैं। मैं उनके चरणों में रहूँगा। बाकी अन्य विचारों को छोड़कर केवल भगवद् चिन्तन के द्वारा प्रशान्त एकाग्र चित्त से ध्यान करूँगा। 'ॐॐॐॐॐॐ' ऐसे सोचते हुए, बिना चूके सुबह-शाम ध्यान करना। दिन में भी कभी मौका मिल जाये तो दफ्तर, स्कूल में गप-शप न करके १-२ मिनट के लिए ध्यान करना चाहिए। नौकरी में आधा घण्टा विश्राम मिलता है तो उसमें भी ध्यान करना। इससे कई समस्याएँ अपने आप सुलझ जायेंगी। मन की अशान्ति कम हो जायेगी। प्रशान्त अवस्था में विकट समस्याओं का समाधान हो जायेगा। किसी के प्रति चिड़चिड़ाहट आ गयी है, क्रोध कर लिया है, हमारे अन्दर नकारात्मक भाव आ गया है, तो उस सब का भी शमन हो जायेगा, हट जायेगा। प्रशान्त हो कर प्रणव में उतर कर ध्यान में जाने से शान्ति मिलेगी। तुरन्त तात्कालिक लाभ यह है कि विक्षेप वृत्तियाँ समाप्त हो जायेंगी।

गुरु महाराज ने कहा है कि भगवान् की तरफ पहुँचने की इच्छा वाला साधक दैनिक विचार करेगा-आत्मा क्या है? अनात्मा क्या है? नित्य क्या है, अनित्य क्या है? शाश्वत क्या है, अशाश्वत क्या है, सत् वस्तु क्या है? दृश्य मात्र क्या है? ऐसा विवेक और विचार पदे-पदे सक्रिय रखना पड़ेगा। आत्मानुभूति, अपरोक्षानुभूति, आत्मज्ञान प्राप्त करना ही हमारा परम लक्ष्य है। अज्ञान के अन्धकार को हटाकर ज्ञान के प्रकाश में आत्मज्ञानी बनकर ऊर्ध्व बन जाना, यही हमारा उद्देश्य और साधना है। साधक मुमुक्षु होता है इसलिए दिन प्रति दिन व्यवहार के क्षेत्र में नित्यानित्य वस्तु का विवेक, सर्व वस्तु का विवेक, आत्माराम का विवेक करते-करते विश्लेषण को सक्रिय रखना। वृत्तियों को पूर्णतः निरुद्ध करने के सतत प्रयास को अभ्यास कहते हैं। सतत उत्साह के साथ दीर्घकाल तक अभ्यास करने से मन स्थिर हो जाता है। यह अभ्यास दैनिक जीवन का अटूट अंग बन जाना चाहिये।

विचार-विवेक के सक्रिय रहने से जीवन में जो भी परिस्थिति आयेगी तो हम उससे विचलित नहीं होंगे, प्रभावित नहीं होंगे। हम अपने भीतर इस अवस्था को स्थायी रूप में स्थापित कर लेंगे। ऐसा विवेक-विचार रखने वाला जगत में रहते हुए ही जगत को जीत लेता है, जगत उसको व्याकुल, दुःखी, विचलित नहीं कर सकता। आप थोड़ा-सा भी अभ्यास करके तो देखो। श्रीकृष्ण परमात्मा स्वयं कहते हैं कि उनके द्वारा बताया गया जो धर्म है उसे दिल से, तहे दिल से अपनाकर अभ्यास में लग जाओ। 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।' इसका थोड़ा सा अनुष्ठान जन्म-मरण रूप महान् भय से रक्षा कर लेता है। एक अन्य गुरु ने कहा है, विवेक विचार आत्मावस्था, ज्ञानावस्था है-अज्ञान को हटाकर के, जगत को समझ कर, फिर अपने स्वरूप से विचलित नहीं होना। ऐसी दिव्यता को हम अपने अन्तःकरण में बना लें, तब क्या होता है? 'यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।' ऐसी स्थिति में पहुँचने पर बड़े भारी दुःख से भी विचलित व विक्षिप्त नहीं होंगे। वहाँ सुख की कमी रहती नहीं और दुःख वहाँ पहुँचता नहीं। उसके अन्दर समता स्थापित हो जाती है। दिव्य जीवन बनाने का तुरन्त लाभ अभी और यहीं है।

सत्य के मित्र बनो और सत्य को अपना मित्र बनाओ। सदाचार को अपना परम धन, परम श्रेय समझो, इससे बढ़कर के कोई ऐश्वर्य है ही नहीं। रुपये-पैसे, सोने-चाँदी, हीरे मोती, नवरत्न से भी ज्यादा है, चरित्र अर्थात् पवित्र आचरण। 'अहिंसा परमो धर्मः।' प्राणी मात्र के लिए हितकारी होकर अपने जीवन को परोपकारी बनाना सबसे उत्कृष्ट धर्म है। काया वाचा मनसा अहिंसात्मक व्यवहार दिव्य जीवन का मार्ग है, रास्ता है। स्वार्थ को सबसे बड़ी महामारी समझना चाहिए। यह रोग, महारोग है। स्वार्थ से हम सब पीड़ित हैं तथा इससे प्रेरित हो कर औरों को भी पीड़ा देते हैं। स्वार्थ को अपने अन्दर से हटा देना ही रोग से मुक्त होना है, निःस्वार्थी बनना ही इसका एकमात्र इलाज है।

सेवा-धर्म को अपनाओ, सेवा करते-करते स्वार्थ अपने आप चला जायेगा, इसकी औषधि है निष्काम सेवा, निष्काम परोपकार। निष्काम सेवा के लिए यह गुण गुरु महाराज ने सिद्धान्त रूप में अपनी विश्व-प्रार्थना में दिया है-

'हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा ही दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें।'

हम जो भी कहते हैं साक्षात् भगवान् को ही कहते हैं। भगवान् सर्वजीव कूटस्थ हैं, सर्व-जीव अन्तर्वासी है। इसको अच्छी तरह से समझकर इसका हमेशा अनुभव करें। भगवान् वैकुण्ठ में नहीं हैं, सब प्राणियों के अन्दर हैं।

'लगाले प्रेम ईश्वर से अगर तू मोक्ष चाहता है,
नहीं वो पाताल के अन्दर नहीं वो आकाश के ऊपर,
सदा वो पास है तेरे कहाँ ढूँढ़न को जाता है।'

वह निकट से निकटतर, निकटतम है।

हरि ॐ तत् सत्।

५. अपने प्रति मित्र बनें

(भावनगर (गुजरात) में १८.३.८७ को दिया गया प्रवचन)

दिव्य आत्म स्वरूप! परम पिता परमात्मा की अमर सन्तान !

ऋषि, मुनि, महापुरुष, सन्त, तपस्वी, सिद्ध, पहुँचे हुए ज्ञानी, तत्त्ववेत्ता, ब्रह्मद्रष्टा अपने उदार दिल से विश्व-प्रेम के कारण, अपने दयामय स्वभाव के कारण ही कुछ बताते हैं। वे स्वयं कृतकृत्य एवं आप्तकाम हैं। उनके लिए कुछ पाने की कोई बात ही नहीं रहती है। क्या उनके लिए कोई काम करने के लिए रह गया है? वे तो परिपूर्ण हैं, मस्त हैं, उस अवस्था में रह कर के शरीर के प्रारब्ध के कारण जब तक शरीर में रहते हैं, तब तक क्या करना है? कुछ-न-कुछ करना है, क्योंकि २४ घण्टे तो आलस्य में पड़ा नहीं रहा जा सकता। हाँ, ऐसे भी हैं जो कभी-कभी सप्त ज्ञान भूमिका में पहुँचे हुए, ऐसी अजगर-अवस्था में पड़े रहते हैं। जैसे जड़भरत थे, रमण महर्षि थे, जैसे ऋषभदेव थे-उन्मनी अवस्था, तटस्थ अवस्था में ४०-५० वर्ष बैठे हुए या लेटे हुए रहे थे। ऐसा भी है, पर यह गिने-चुने अपवाद मात्र ही हैं। कितने ही महापुरुष हैं जो ऐसी अवस्था को पहुँचे हुए हैं तो भी उनके अन्दर प्रारब्ध कर्म के अनुसार शरीर से इधर-उधर चेष्टा करने को, कर्म करने को है, तो वे क्यों करते हैं? किस वास्ते चेष्टा करते हैं? अपने वास्ते कुछ नहीं है, और अपना करके उनका कोई नहीं है, न ही अपना करके कुछ कहते हैं। उनके लिए सब अपना है, मेरा है। ऐसी अवस्था में गीता कहती है, उसकी क्या चेष्टा होती है, केवल 'सर्वभूतहिते रताः' । प्राणी मात्र के लिए कल्याण हो, सबका कल्याण हो, सबका हित हो, सभी दुःख से मुक्त हों, सब आनन्द के भागी हों। ऐसी एक महान् भावना से, दृष्टि से वो आपका पूरा जीवन लोक-कल्याण के लिए, लोक-उद्धार के लिए, मानव को पतित अवस्था से उठाने के लिए लगा देते हैं। इसको कहते हैं 'लोक-संग्रह'। ऐसे पहुँचे हुए पुरुषों की जो निःस्वार्थ, अहंकार रहित, संकल्प रहित भावना से, भगवद् इच्छा के अनुसार चेष्टा करते हैं, उसे कहते हैं 'लोक-संग्रह।'

ऐसे ही लोक-संग्रह के कार्य करके हमारे सद्गुरुदेव ने भी इस प्रकार की बीसवीं शताब्दी के विर्षम वातावरण में एक ही उद्देश्य से अपनी संस्था बनायी। एक ही उद्देश्य से अपने लेख लिखे, अपने प्रचार-प्रसार का कार्य किया, इसी उद्देश्य से रात-दिन कार्य किया ताकि मानव का कल्याण हो, सब सुखी रहें, कोई दुःखी न रहे। इस प्रकार की चेष्टा करते हुए, इस प्रकार से अपनी जीवन यात्रा करते हुए, आप जैसे महापुरुषों की चेतावनी, महापुरुषों का आह्वान था, उठो, जागो, हे मानव क्या कर रहे हो, क्यों रोते-भटकते तुम इस अवस्था में हो? परमानन्द प्राप्त करने के लिए भगवान् ने तुमको मानव देह देकर यहाँ भेजा है तो उसे भूल कर के क्यों बिना कारण तुम ऐसा शोक कर रहो हो ? यह आवश्यक नहीं है! अपने दुःख की सृष्टि करके तुम क्यों उसमें हाय-हाय कर रहे हो? भगवान् ने तो यहाँ केवल आनन्द को ही भरा है। यहाँ पर तमाम अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड आनन्द से ओत-प्रोत है। आनन्द से ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है। आनन्द से ही ये पूरा का पूरा अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड भरा हुआ है। आनन्द से ही ओत-प्रोत है। और यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो उस परम अवर्णनीय आनन्द, ब्रह्मानन्द, नित्यानन्द की ओर ही सब जा रहे हैं। सब प्रकार की नदियाँ एक ही सागर की ओर जा रही हैं। ऐसा तमाम विश्व ही क्या, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड आनन्द की ओर ही जा रहा है। ऐसा शुरू में आनन्द, बीच में आनन्द और अन्त में भी आनन्द। आनन्द ही आनन्द ! सिवा आनन्द के और कोई चीज है ही नहीं। जब ऐसा सत्य है, वास्तविकता है तो फिर तुम इस आनन्द के अन्दर दुःख, चिन्ता, शोक का अनुभव करते हो यह कितनी विचित्र बात है! बड़ा रहस्यमय है, वास्तव में यह अनर्थ है। भगवान् ने दुःखकी सृष्टि नहीं की है क्योंकि वह ऐसी सृष्टि कर ही नहीं सकते, वो आनन्दमय हैं। उन तक पहुँच कर, उनके अनुभव में जा कर के महापुरुषों ने घोषणा की- 'आनन्दं ब्रह्मेति विजानात' जो कुछ आया है, आनन्द से ही आया है, आनन्द के ऊपर ही सब-कुछ प्रतिष्ठित है और आनन्द की ओर ही सब जा रहे हैं। सिवा आनन्द के हम और कुछ देखते नहीं भाई, तो इसको कैसे समझ सकते हैं?' किन्तु हम तो कहते हैं कि हम दुःख में हैं, चिन्ता में हैं। लड़के को नौकरी नहीं मिली तो दुःख, नौकरी मिल कर

फिर हटा दिया गया तो दुःख, कोई भ्रष्टाचार विरोधी कानून में पकड़ लिया गया। क्यों पकड़ लिया, इसके तुम ही कारण हो। क्योंकि ऐसा करके जितना वेतन लेते हो, उससे चौगुना तुम और ले आ सकते हो। उसकी बीबी भी उसके पीछे प्रेरित करती है, 'देखो, यह हमारा पड़ोसी है, उसका वेतन है ७००, और ले आता है २५००, ३०००। तुम बुद्ध ऐसा क्यों नहीं करते?' ऐसा कह कर उसको प्रेरणा देती है तो एक दिन भ्रष्टाचार विरोधी कनून के अन्तरगत पकड़ लिया जाता है। नौकरी में गया, बड़ा आनन्द आ गया, वेतन से ज्यादा धन ले कर आया तो बड़ा आनन्द हो गया। निकाल दिया गया तो फिर मायूसी। तो क्या भगवान् इस पर दोषी हैं? अपने कष्ट-संकट को, अपने दुःख को हम ही उत्पन्न करते हैं, इस प्रकार की अवस्था में विचित्रता क्या है? जब आनन्द ही आनन्द यथार्थ सत्य है, आनन्द ही आनन्द की एकमात्र सत्ता विराजमान है, सिवा उसके और कोई चीज है ही नहीं, फिर ऐसे अनेक प्रकार के दुःखों की हम सृष्टि करते हैं, ये ही बड़ी विचित्रता है। इसका एक कारण और भी है, जैसे हमारे लिए सब कुछ है, नौकरी भी है, लड़की अच्छे घराने में शादी हो करके चली गयी है, लड़का अच्छे पद पर है। सब-कुछ है, हम सुख से रह सकते हैं, लेकिन हमारे पड़ोस में लड़की की
अपने प्रति मित्र बनें शादी हुई और भी अमीर आदमी के घराने में, और उनका लड़का जो है हमारे लड़के से अच्छा रहा और भी तरक्की करके अमेरिका में उसको नौकरी मिल गयी है। बस अफसोस ! देखो सब-कुछ है, लड़का अच्छे पद पर है, लड़की अच्छे घर में गयी है। और कहीं कुछ हमसे अधिक अच्छा हो गया, उसमें हम अपने सुख, तृप्ति, आनन्द को छोड़ कर दुःखी हो जाते हैं। आप क्यों दुःखी हैं, इसके लिए आप क्या कारण बताएँगे, अपने आपको उल्लू कैसे बतायेंगे? इस प्रकार से हम जहाँ पर दुःख, शोक, चिन्ता है भी नहीं उसमें भी यह हमारा तजुरबा है कि-मानव मन स्वयं ही दुःख की सृष्टि कर लेता है। यह कैसा होता है? यह क्या माया है? क्या रहस्य है? इसे ही समझना है।

जब आनन्द ही आनन्द है तो हम किस प्रकार चिन्ता, शोक, दुःख आदि की सृष्टि करते हैं, इसको समझने के लिए एक सरल उदाहरण देते हैं, जब सूर्यास्त हो जाता है तो रात होने पर और अँधेरा हो जाता है। इसलिए हमें बिजली से प्रकाश करना पड़ता है, लेकिन वहाँ पर कोई लूज कनेक्शन हो गया, फ्यूज उड़ गया, तब फिर अन्धकार छा जाता है और हमें मोमबत्ती जलानी पड़ती है। और जोर की हवा आये तो मोमबत्ती भी बुझ जाती है और फिर अन्धकार छा जाता है। सूर्यास्त हो जाने पर रात में भी अन्धकार, बिजली चली गयी तो अन्धकार, मोमबत्ती बुझ गयी तो भी अन्धकार! तो इतने अन्धकार में हम रहते हैं। लेकिन थोड़ा सा सोचो क्या वास्तव में अन्धकार जैसी कोई चीज है? अन्धकार नाम का ऐसा कोई तत्त्व है, वो कोई वस्तु है, कोई पदार्थ है उसका निर्माण कर सकते हैं प्रयोगशाला में? थोड़ा सोचो तो कुछ शताब्दी के पहले, कुछ शताब्दी क्या, कुछ ५० साल के पहले इस बात को स्पष्ट समझना थोड़ा मुश्किल था। लेकिन जब से स्यूतनिक आदि का, आकाश के महामण्डलों में अपने यन्त्रों के द्वारा जाना शुरू हो गया और इसके बाद यन्त्र में जो एस्ट्रोनोज (विषेश व्यक्ति) गये हैं, उन्होंने जाकर प्रत्यक्ष अनुभव करके इस बात का वर्णन किया, वे बोले कि, 'हम जब भूमण्डल से ऊपर चले गये, पृथ्वी के गोले से हम आगे पार करके चले गये, हमने देखा कि न रात, न दिन, न घण्टा, २४ घण्टा टाइम की भी कोई बात नहीं है। काल से हम परे चले जाते हैं। वहाँ एक प्रकाश ही प्रकाश है। प्रचण्ड प्रकाश, जहाँ देखो प्रकाश ही प्रकाश, प्रकाश के सिवा कुछ है ही नहीं। न सूर्यास्त, न सूर्योदय, न रात, न दिन, न शाम। एक ही समान २४ घण्टे सूर्य का प्रचण्ड प्रकाश। हर समय इतना प्रकाश कि आँख बन्द करनी पड़ती थी और जितने दिन वहाँ रहे केवल प्रकाश ही प्रकाश। महीनों तक रहे केवल प्रकाश ही प्रकाश। सिवा प्रकाश के कोई और चीज है ही नहीं। उससे हमको अनुमान हो गया कि वास्तव में सोलर सिस्टम क्या है? केवल प्रकाश ही प्रकाश है।' यहाँ पर अन्धकार है ही नहीं। अन्धकार हमारी कल्पना है, और यदि फिर भी हम अन्धकार का अनुभव करें, तो अन्धकार की निवृत्ति कैसे हो? ऐसा हमको पूछ करके उपाय जानना चाहिए। यदि हम सूर्य भगवान् के पास जायें तो यह अन्धेरा एक कल्पना है। वैसे आप सूर्य भगवान् के पास जा कर रहेंगे नहीं, खाक बन जायेंगे, फिर भी मान लो कि हम गये, सूर्य भगवान् के पास जा कर सामने खड़े हुए, 'आपका यहाँ आना कैसे हुआ?' 'सूर्य भगवान्, हमारी एक समस्या है। हल करने के लिए आपके पास आये हैं,' 'तो बताओ क्या बात है?' 'अन्धकार को कैसे हटाएँ, यह बड़ा सताता है। अन्धकार

हमारे जीवन के बड़े हिस्से को ले लेता है। अन्धकार को कैसे निकालें ?' सूर्य भगवान् क्या बोलेगा ? सूर्य भगवान् उसका जवाब नहीं देगा, उल्टा पूछेगा, 'अन्धकार ? अन्धकार क्या होता है?' अन्धकार तो सूर्य भगवान् के अनुभव में है ही नहीं, वहाँ तो शतप्रतिशत, अनादि, अनन्त प्रकाश ही है। सूर्य भगवान् के पास जा कर अन्धकार का आप इलाज पूछो तो वह पूछेगा अन्धकार क्या चीज होता है वो पहले बताओ तब हम जा कर बतायेंगे। अन्धकार को कैसे समझायेंगे सूर्य भगवान् को? ऐसे ही ब्रह्मज्ञानियों के पास जा कर दुःख, शोक और बिन्ता के बारे में पूछो तो वो बोलेंगे, 'हमें तो पता नहीं। आनन्द ही आनन्द है। तुमने सृष्टि करके रखी है यह चीज।' दुःख है, शोक है, चिन्ता है, भय है। वास्तव में दुःख आदि कोई चीज है ही नहीं, केवल आनन्द मात्र है। हम सृष्टि करते हैं तो अपने अज्ञान से, अविद्या से। आप उस आनन्दमय परब्रह्म का ही स्वरूप हैं, उसी का अंश हैं। उनके और आपके वास्तविक तात्त्विक स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। भगवान् को तुम 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' बोलो या भगवान् को परम ब्रह्मतत्त्व, एकमेव अद्वितीयं परब्रह्म बोलो, कुछ भी बोलो वास्तविक तात्त्विक स्वरूप जो है, जीवात्मा और परमात्मा का केवल एक ही है, दो चीज नहीं है। आप आनन्दमय आत्मा हैं, फिर भी आनन्दमय आत्मा होते हुए भी आपके अन्दर उसके विपरीत अनुभव कैसे आता है?

कठोपनिषद् के प्रसंग में नचिकेता और यम धर्मराज का सम्भाषण होता है तो उसमें संकेत मात्र में यम धर्मराज कहते हैं कि आपको अपने आनन्द का अनुभव इसलिए नहीं होता है क्योंकि उसके प्रति आप अपनी दृष्टि कदापि नहीं डालते। तुम्हारी दृष्टि इस दृश्य जगत् के अनेक अपूर्ण अल्प वस्तु-पदार्थों की तरफ ही है। आनन्द जो तुम्हारे अन्दर है, तुम्हारे वास्तविक निज स्वरूप में है। यह अद्भुत अवर्णनीय शान्ति, यह आनन्द जो सदा-सर्वदा है, उसकी तरफ तुम कभी ध्यान देते नहीं हो। तुम्हारा पूरा का पूरा ध्यान, जिस वस्तु में सुख नहीं है वहाँ ही है।

श्रुति घोषित करती है, 'यो वै भूमा तत्सुखम्, न अल्पे सुखम् अस्ति।' तो अल्प वस्तु में, एक क्षणिक नाशवान् वस्तु में जो नहीं है, ऐसा इस परम सुख को बताया जाता है। किन्तु आप तो पूरा का पूरा ध्यान पञ्चेन्द्रिय के द्वारा अपने मन को बाहर निकाल करके, बहिर्मुखी वृत्ति से विषयाकार वृत्ति में रह कर उस परम सुख को अपने आप खो बैठे हैं। इस बात को अच्छी तरह ध्यान दे कर समझें कि इस संसार में आ कर आपको शान्ति नहीं है, आनन्द नहीं है, इसका कारण ये नहीं है कि यहाँ पर शान्ति और आनन्द का अभाव है। शान्ति और आनन्द परिपूर्ण है, सदा-सर्वदा है। ये ब्रह्ममय जगत है, यहाँ यह है। शान्ति और आनन्द का अभाव आप में नहीं है और न ही आपको किसी ने जबरदस्ती शान्ति और आनन्द से वंचित रखा है। परिपूर्ण विश्व में शान्ति और आनन्द है किन्तु आपको उसकी अनुभूति नहीं है। अपने अज्ञान से, अविचार से और गलत चेष्टा से आप इस शान्ति और आनन्द से वंचित हैं। इस गलत चेष्टा को समझना चाहिए। इस गलत चेष्टा का क्या स्वरूप है? क्योंकि जैसे सकारात्मक साधना है, इसी प्रकार नकारात्मक साधना भी है। सकारात्मक साधना वह है कि आनन्द प्राप्ति के लिए जिसको करना चाहिए उसको करना ही है और नकारात्मक साधना वह है कि जिसको नहीं करना चाहिए, उसे नहीं करना है। इन दोनों को साथ-साथ रख कर जो करेगा, उसे आनन्द और शान्ति प्राप्त करने के लिए एक कदम उठाना नहीं पड़ता, एक छोटी अंगुली भी उठानी नहीं पड़ती, क्योंकि वह सदा प्राप्त वस्तु है। उसको प्रयत्न करके प्राप्त नहीं करना पड़ता। ऐसा भगवान् आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र बोलते हैं। भगवान् ने क्या कहा है आपको ? आनन्दकन्द भगवान् कृष्णचन्द्र ने आपको यह कहा है-

'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।।'

भगवान् आनन्दमय, आनन्दस्वरूप, आनन्दकन्द, वृन्दावन लीला के बाद जब बड़े हो जाते हैं, जगद्गुरु के स्थान में रह कर के वही आनन्दकन्द भगवान् कहते हैं कि सबके अन्दर स्वयं उन्हीं का वास है, आपके अपने रूप में आपके भीतर रहते हैं। आपके अपने का अर्थ है, स्वयं आपके आत्मा। आपके स्वयं के निजी व्यक्तित्व को आत्मा कहते हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं, 'मैं आपके अन्दर हूँ, सबके अन्दर हूँ। सब मानव के अन्दर ही नहीं सब

प्राणी मात्र के अन्दर हूँ। अहमात्मा.....।' आनन्दस्वरूप भगवान् इस प्रकार झूठ नहीं कह सकते हैं। अपने दिव्य मुखारविन्द से, अमृतमय बचन में इस रहस्य को खोल करके बताया है। मैं आनन्दस्वरूप भगवान् आपके अन्दर हूँ। यदि आनन्दस्वरूप भगवान् आपके अन्दर हैं तो आप अपने अन्दर दुःख को, शोक को, चिन्ता को कैसे भला मान सकते हैं। आनन्दस्वरूप भगवान् जो आपके अन्दर हैं, उनकी आपने बिल्कुल उपेक्षा कर दी है, उनकी तरफ आप ध्यान नहीं देते हैं, उनकी बात पर आपने विश्वास नहीं किया है। अगर उनकी बात पर विश्वास रखते- 'आहा ! आनन्दस्वरूप भगवान् मेरे अन्दर हैं, मेरी आत्मा के रूप में हैं तो मुझे उन्हें जरूर पहचानना चाहिए, मुझे उनका जरूर अनुभव करना चाहिए। उनके पहचानने के लिए मैं जरूर अभ्यास में लग जाऊँगा। मैं छोड़ूंगा नहीं। जब भगवान् ने कहा है तो जरूर होंगे। उनका आनन्द हमारे अन्दर जरूर मिलेगा।' ऐसा करके आप पूर्ण विश्वास रख कर के इधर-उधर भाग-दौड़ करके नहीं, अल्प वस्तु की प्राप्ति के लिए जन्म वृथा नहीं खोते हुए, अपने जीवन में सुबह-शाम जितना हो सके मन को अन्तर्मुखी करके, ध्यान करके आप कोशिश में लग जायेंगे तो कालक्रमेण आपको आनन्द और शान्ति अवश्यमेव मिलेंगे। यह बिल्कुल निश्चित है। त्रिवार सत्य है।

भगवान् स्वयं भगवद्गीता के छठे अध्याय में कहते हैं कि ऐसा करके तुम परमानन्द को प्राप्त कर सकते हो। आत्यन्तिक सुख को प्राप्त कर सकते हो। प्रशान्त मुद्रा में बैठो, आसन में बैठो, श्वास को सन्तुलित करो। आँखें मूँद करके पूरा अन्दर देखो, अपने लक्ष्य को वहाँ पर ले जाओ जहाँ पर मैं बैठा हूँ।

जिस कारण हम यहाँ पर आये हैं, और जिस वास्ते हम यहाँ पर भेजे गये हैं, इन दोनों में अन्तर देखना चाहिए। प्रारब्ध का भोग भोगने के लिए हम यहाँ आये हैं और परमानन्द प्राप्त करने के लिए हम भेजे गये हैं। भगवान् का उद्देश्य हमें यहाँ भेजने का यह है कि इस अमूल्य मनुष्य शरीर का, अमूल्य मनुष्यत्व का हम परम सदुपयोग करके इसी जन्म में, इसी शरीर के द्वारा, उस आनन्दमय अवस्था को प्राप्त कर लें। और वे बार-बार कई ऋषि-मुनियों द्वारा, योगियों द्वारा, धर्मग्रन्थों द्वारा, भक्तों द्वारा हमको याद दिलवाते हैं कि यहाँ पर उस परम लक्ष्य की प्राप्ति के वास्ते भेजा गया है। इसलिए हमें जीवन में उस लक्ष्य प्राप्ति को केन्द्रीय स्थान देना चाहिए। उस लक्ष्य प्राप्ति को अपने जीवन में अन्य सब मूल्यताओं की अपेक्षा सबसे ऊँची मूल्यता देनी चाहिए। सबसे प्रथम स्थान इसी का है। इसे अपरोक्षानुभूति कहो, भगवद्दर्शन कहो, गौड रियलाइजेशन कहो, आत्मज्ञान कहो, कुछ भी कहो, उस शब्द से कोई अन्तर नहीं पड़ता है, 'उस परम आनन्द की, अवर्णनीय आनन्द की, दिव्य आनन्द की, नित्य आनन्द की, असीमित अगाध आनन्द की अनुभूति, ये ही मेरे लिए सबसे ऊँची मूल्यता है, मेरे जीवन में इसका केन्द्रीय स्थान है। और इसी के वास्ते मैं श्वास ले रहा हूँ, इसके वास्ते अन्न खा रहा हूँ, इसी के वास्ते शरीर का पालन-पोषण कर रहा हूँ, इसी के विकास के वास्ते अध्ययन कर रहा हूँ। बाकी सब गौण बात है, बाकी सब सेकेन्डरी है, मुख्य यह है,' इस प्रकार जब अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को मुख्यता दे कर, अन्य सब को गौण स्थान में भेज देंगे, तब जा कर आपके जीवन में कुछ न कुछ बनेगा। तो क्या होगा? अभी तो अध्यात्मिक लक्ष्य जो है, वो हमारे जीवन में छोटे से एक स्थान में है, कोने में है। थोड़ा सुबह घण्टी बजा दिया, आरती कर दिया। बाकी प्रपंच के व्यवहार में जा कर, फँस करके भूल गये, प्रपंच को इतना उलझन भरा बना दिया। सादगी से जीवन व्यतीत करने में थोड़ा बहुत समय भगवद् भजन इत्यादि में मिल सकता है। लेकिन हमारा जीवन इतना जटिल हो गया है कि जानबूझ कर हम उलझन में फँसते हैं। फिर बोलते हैं, हमें समय नहीं मिलता है जप के लिए, ध्यान के लिए, भजन के लिए। समय सबके लिए २४ घण्टा ही है। भगवान् ने एक मिनट भी कम नहीं किया है। सबके लिए पूरे के पूरे २४ घण्टे दिये हैं। किसी को समय मिलता है, किसी को समय नहीं मिलता है, क्यों? यह भगवान् की करनी नहीं है। हम अपने जीवन को इतना जटिल बनाते हैं और अकारण ही इतनी अनावश्यक चीजों से भर देते हैं। कूड़ा-करकट को अपने दिमाग में भर कर के, भगवान् के लिए समय नहीं देते हैं।

इसलिए हमें सादगी को अपनाना चाहिए। जितनी सादगी से हम जीवन जी सकते हैं, उतनी ही हम सादगी से जीवन जीने की कोशिश करें, अपने आप समय मिल जायेगा। इसके लिए महर्षि पतंजलि ने कहा- अस्तेय और अपरिग्रह। जीवन में सादगी को साधने के लिए अपरिग्रह और अस्तेय को अपनाओ। दूसरे अंग-

नियम में सन्तोष-सन्तुष्टि को बताया। सन्तोष से आशा-तृष्णा नहीं बढ़ेगी। जब तक आशा-तृष्णा बढ़ती रहेगी, मन में शान्ति-चैन नहीं रहेगा। हमेशा हमको ये चाहिए, ये चाहिए लगा रहेगा। जितना आया, उतना पूरा नहीं हुआ तो क्या होगा। ऐसे विक्षिप्त-अशान्त मन में सुख और शान्ति मिलना सर्वथा असम्भव है। इसलिए सादगी को अपनाओ और 'सादा जीवन, उच्च विचार' रखो।

'जीवन में सन्तुष्ट रहो' इसके लिए कोई-कोई यह गलत ख्याल रखता है कि जिसके जीवन में सन्तोष आ जायेगा तो वह निराशावादी बन जायेगा, वह आलसी बन जायेगा, वह पुरुषार्थ नहीं करेगा। यह बिल्कुल गलत ख्याल है। सन्तोष मन की एक स्थिति है। सन्तोष अन्तःकरण की एक अवस्था है। उस अवस्था में रहो, उस स्थिति में रहो, फिर भले ही चेष्टा करो। अपनी प्रगति के वास्ते, विकास के वास्ते, तरक्की के वास्ते तुम पुरुषार्थ करो; किन्तु असन्तुष्ट हो कर के नहीं, व्याकुल हो करके नहीं। फिक्र के साथ चेष्टा करना, पुरुषार्थ करना यही मुख्य समस्या है। हमेशा सदा सन्तुष्ट रहो, सदा प्रसन्न रहो, कोई पूछता है, 'कैसे हो?' तो आपका उत्तर यही होना चाहिए, 'मजे में हूँ। भगवान् का दिया सब-कुछ है, कोई कमी नहीं!' लेकिन चेष्टा करो।

सन्तोष और तृप्ति तथा सादगी और पुरुषार्थ में परस्पर कोई विरोध नहीं है, पुरुषार्थ जो करना है करो। सदा सन्तोषी रहो, सदा सुप्रसन्न रहो। सदा सादगी को अपनाओ, ज्यादा महत्त्व सादगी को दो। 'मैं कितना कम से कम में सुखी और सन्तुष्ट रह सकता हूँ' हमेशा इसी विचार को प्रमुखता दो और सादगी को अपनाओ। सादगी और सन्तोष को अपनाया तो ? किसी के प्रति हमारी ईर्ष्या नहीं होगी, किसी को हमसे ज्यादा मिल गया तो हमें जलन नहीं होगी। हम हमेशा प्रशान्त रहेंगे। ईर्ष्या के लिए कोई कारण नहीं रहेगा। तुलनात्मक भावना नहीं रहेगी। हमेशा शान्त रहेंगे, प्रसन्न रहेंगे। ऐसे मन को हम भगवान् की तरफ दे सकते हैं। ऐसा मन भगवान् का चिन्तन कर सकता है, सहज चेष्टा हो सकती है, ध्यान भी हो सकता है।

जैसा कल विवेक सागर जी ने कहा कि यदि नये प्रकार का जू, चिड़ियाघर बनायें और उसमें एक जानवर, जो अब तक अन्दर नहीं रखा हुआ है, एक आइटम जो अब तक नहीं है, उस आइटम को रखना पड़ेगा। वो क्या है? मानव-पशु। यह सबसे अधिक-महाभयंकर है! पूरी की पूरी दुनियाँ का विनाश करने के लिए बैठ गया है, अपनी कौम को खतम करने के लिए तैयार हो कर बैठ गया है। बाकी जंगल के हिंसात्मक जानवर ऐसी योजना बना कर नहीं बैठते हैं, भूख के लिए वे शिकार करके खाते हैं। पेट भरे सिंह के सामने से हिरन चला जाये तो उसे कुछ नहीं करेगा, छेड़ेगा नहीं। ऐसा कहते हैं जानकारी रखने वाले।

इसी उपमा को ले कर मैं कहता हूँ। इस मार्ग में आप साधक हैं, भगवद् भक्त हैं, जिज्ञासु और मुमुक्षु हैं। इसको भूल करके आप कहते हैं, 'हम संसारी मानव हैं।' आप संसारी मानव नहीं हैं। आप अविनाशी अमर आत्मा हैं। और थोड़ा देहाध्यास, अज्ञान के कारण इस चीज में तत्काल के लिए फंसे हैं। ये आपकी निजी अवस्था नहीं है, न ही इसको कायम रखने के लिए कहा गया है। इस अवस्था को आप ने कायम नहीं रखना है। इसे स्थायी रखा तो बड़ा अपराध होगा। भगवान् ने आपको बहुत बड़ा सुनहरी पुरस्कार दिया है, अमूल्य पुरस्कार दिया है तो इस पुरस्कार को इन्कार कैसे किया जायेगा। अज्ञान, अविद्या और देहाध्यास के कारण इसको कायम नहीं रखना है। संकल्प द्वारा इसको समाप्त करके साधना में लग जाना है। इसी कारण ये सब कार्यक्रम होते हैं, महापुरुष आते हैं। ऐसी अवस्था में जिज्ञासु, मुमुक्षु, साधक और भक्त योगाभ्यास करके, मोक्ष प्राप्ति के लिए कोशिश करते हैं।

जीवन के इस रास्ते में आपका सबसे बड़ा दुश्मन कौन है? आप ही हैं, और कोई नहीं है। यदि आप अपने स्वभाव में से-इस महान् लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में, अपनी साधना में, अपने योगाभ्यास में, अपने भक्ति-भजन में जो विपरीत हो, जो प्रतिकूल हो, उसे दूर करने के लिए प्रयत्नशील नहीं हैं, ऐसी चीजों से बच कर नहीं रहेंगे, ऐसी चीजों को अपने स्वभाव से बाहर निकाल करके रखने की कोशिश नहीं करेंगे तो आप अपनी समस्या की, आप ही सृष्टि करेंगे। आप ही विघ्न और बाधा बन जायेंगे, अपने दुश्मन आप ही बन जायेंगे। और यदि आप ही

इस प्राप्ति के मार्ग में इसके लिए जो भी सहायप्रद है, जो भी अनुकूल है, जो भी उपयोगी है, उस सामग्री को संग्रह करने में लग जायेंगे तो आपका, अपने जैसा मित्र और कोई नहीं है। आप ही अपने परम मित्र बनेंगे। आप ही अपने परम हितेषी बनेंगे। भगवान् ने गीता में कहा है :

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

जो अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रख करके, संयमी बन करके अपने साधन में लगता है, वह अपना परम मित्र है। और जो इन्द्रियाँ जैसा बोलती हैं, उन का गुलाम हो कर भागता रहता है, वह अपने आपका शत्रु बन जाता है। ऐसा कह करके 'उद्धरेदात्मनात्मानम्' कहा गया है। एक ही सूत्र को आपके सामने रख करके मैं समाप्त करता हूँ। आप ही अपने शत्रु हैं, आप ही अपने मित्र हैं। आप साधना में सफलता प्राप्त करके जीवन में लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो आप अपने प्रति मित्र बनें।

इस विषय में केवल एक छोटी सी बात भगवान् ने कही है। तो मैं उसको आपके सामने रख कर समाप्त करता हूँ। भगवान् ने कहा है कि इस मार्ग में तीन चीजों से बच जाओ। तुम्हारे लिए तीन चीजें बड़ी विपत्ति हैं, इनसे बच जाओ। एक तो है क्रोध रूपी आसुरी सम्पदा, यह राक्षसों का मुख्य गुण है। हम जब असुर नहीं बनना चाहते हैं, भगवान् बनना चाहते हैं तो आसुरी सम्पदा को अपने साथ में न रखें। साधना तो बहुत सुन्दर करें, किन्तु साथ ही बीबी से क्रोध करें, बच्चों से क्रोध करें, यह ठीक नहीं है, क्योंकि यदि किसी भी रूप में क्रोध आ जाता है तो यह आध्यात्मिक जीवन में, साधना मार्ग में महान् बाधा है, महान् विघ्न है। क्रोध नहीं होना चाहिए, यह आसुरी सम्पदा है। क्रोध से क्या-क्या सब बन जाता है, इस पर तो बड़ी किताब लिखी जा सकती है। गुरु महाराज ने 'क्रोध पर विजय' पुस्तक में लिखा है। उसको पढ़ें तो आपको मालूम होगा कि उससे क्या-क्या अनिष्ट हो सकते हैं। अपने को क्रोध से बचा कर रखना है।

अति लोभ, अति आशा-'सब मेरे लिए चाहिए' जितना चाहिए उसमें सन्तोष नहीं है। लोभ महान् शत्रु है। क्यों? जिनके हृदय में लोभ जा कर बैठ जाता है, उनका हृदय पाषाण बन जाता है, लोभ के वास्ते वह और सबका ख्याल छोड़ देता है। जिनके हृदय में लोभ है, वहाँ दया नहीं है, वहाँ पर रहम नहीं है। दूसरों के वास्ते कोई चिन्ता नहीं है, करुणा नहीं है,

सहानुभूति नहीं है। कुछ नहीं है, बिल्कुल शुष्क हो जाता है। हृदय रूखा-सूखा शुष्क हो जायेगा, बिल्कुल पत्थर बन जायेगा। इसलिए लोभ महान् शत्रु है। जहाँ पर लोभ जा कर बैठ गया, समझो सब सद्गुण, सब दैवी सम्पदा हट जाती है, हृदय पाषाण बन जाता है, निर्दयी बन जाता है। इसलिए लोभ से बचना चाहिए। जिनके हृदय में लोभ आ गया, वह भगवान् को नहीं मानता है। जिसके प्रति लोभ है, उसके पीछे लग जाता है। वह जन्म बरबाद कर लेता है। लोभ आपका महान् शत्रु है, इससे बच कर के रहना चाहिए।

मन में अनुचित कामना, अपवित्र कामना, मलिन कामना, मैं खास चीज इसलिए बता रहा हूँ, क्योंकि भगवान् ने स्वयं हमको इसके प्रति साबधान किया है, 'जागो, खबरदार, होशियार रहो, ये तीन तुम्हारे लिए घातक है, नाशकारक हैं, अधोपतन का मार्ग हैं।' इतने कड़े शब्द का प्रयोग करते हैं। बोलते हैं, तीनों नरक के द्वार हैं। भगवान् इतना सुन्दर अमृतमय वचन बोलते हैं, किन्तु यहाँ पर इतने कटु शब्द बोल रहे हैं कि ये नरक के द्वार हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।

काम के लिए यहाँ दो अर्थ लगा सकते हैं, एक तो कामुकता, क्योंकि कामुक-वासना, देहाध्यास जहाँ तक है नहीं छूटेगी। देहाध्यास जब तक नहीं छूटेगा तब तक स्थूलता से हमारी चेतना सूक्ष्मता तक नहीं पहुँच सकती। आध्यात्मिकता तो छोड़ो, सूक्ष्मता में भी नहीं पहुँच सकती। और दूसरा अर्थ है काम माने मनोकामना, कई प्रकार की इच्छाएँ। धर्म के विपरीत इच्छाएँ, स्वार्थ परायण इच्छाएँ, अपवित्र इच्छाएँ, अनुचित इच्छाएँ। ये सब हमारे लिए महान् शत्रु हैं। नरक की ओर ले जाने वाली हैं। पवित्र इच्छाएँ ठीक हैं-सत्संकल्प है, शुभ इच्छा है, इसके प्रति भगवान् ने कुछ नहीं कहा है। कहते हैं जिनके मन में बहुत अच्छी सुन्दर-सुन्दर इच्छा आती है, वह ऐसे सम्मेलनों में आते हैं, सत्संग में बैठते हैं, महात्माओं के दर्शन करते हैं, सत्संग श्रवण करते हैं। ऐसी इच्छा भगवान् का ही एक स्वरूप है।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।

'मैं काम के रूप में (यहाँ काम का अर्थ है उचित कामना, ऊँची कामना) में हूँ।' यह काम, इन तीन चीजों से बच कर, आया हुआ काम है। भगवद्दर्शन, ज्ञान-प्राप्ति को केन्द्रीय स्थान दें। सबसे उत्कृष्ट, उन्नत लक्ष्य को मूल्यता दे कर बाकी अन्य चीजों को गौण समझ करके, हम अपने जीवन में, व्यवहार जगत् में कर्तव्य कर्म करते-करते साथ में साधना को नहीं छोड़ेगे, साधनामय जीवन बनायेंगे, भक्तिमय जीवन बनायेंगे, तब इसी शरीर में उस लक्ष्य को प्राप्त करके हम धन्य बन सकते हैं, बनना चाहिए भी।

इसी प्रकार के दिव्य जीवन की ओर प्रेरणा करने के लिए गुरुमहाराज ने आ कर के जीवन भर इसकी घोषणा की। इस प्रकार के जो सम्मेलन होते हैं, उस बात को पुनः-पुनः याद दिलाते हैं, क्योंकि जितना भी तुमने किया, माया उसको भुला देती है। पुनः याद दिलाने के लिए ही इस प्रकार के सम्मेलन होते हैं। आप सब को यह सब श्रवण करके, लाभान्वित हो कर, तीव्र आकांक्षा के साथ, साधक बन करके, साधनामय जीवन बना कर के, जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करके, अपने जीवन को धन्य बनाना चाहिए। ऐसा मैं आप सबसे प्रार्थना करता हूँ। भगवद् चरणों में याचना करते हुए समाप्त करता हूँ कि आपका जीवन परिपूर्णता और सफलता को प्राप्त करे!

हरि ॐ तत् सत्।

भगवान् हमारे भीतर शुद्धता की तीव्र आकांक्षा के रूप में प्रकट होते हैं। शुद्धता एवं पवित्रता के द्वारा भक्ति का उदय होता है, भक्ति से वैराग्य आता है, वैराग्य से परम तत्त्व की प्राप्ति होती है तथा व्यक्ति अमरत्व और परम शान्ति प्राप्त कर लेता है।

सदा-सर्वदा भगवान् के सान्निध्य को अपने जीवन में अनुभव करते हुए, आराधना का भाव रखते हुए कार्य करें और उन्हें भगवान् के चरणों में अर्पित करें। कर्म-समर्पण करने से कर्म 'योग' का रूप धारण कर लेता है तथा जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है।

A DIVINE LIFE SOCIETY PUBLICATION